शोधादर्श

६७

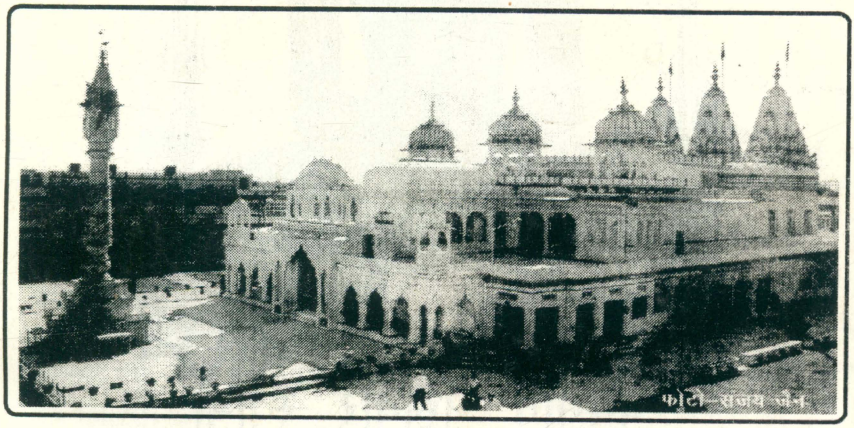

मन्दिर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी (राजस्थान)

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

वर्धमान महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी

वह शुभ बेला, तिथि दिन महान, अवतरित हुए शिशु बाल वीर
वसुधा के वे कण-कण महान, पाया जिन ने युग पुरुष धीर
है धन्य उसे जिस दम्पति ने, पाया सुत ऐसा महावीर।
खेले थे जिस घर-आँगन में, धनि वर्धमान से सबल धीर
अतिवीर बाल ने आगे चलकर, हर ली जग-जन की पीर
एक स्वर से प्राणी बोल उठे, जय महावीर जय महावीर!

- श्रीमती ज्ञानमाला जैन के कविता संग्रह
'यह जीवन कठिन कहानी है', से साभार उद्धृत

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
सलाहकार	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री रमा कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
		श्री सन्दीप कान्त जैन
		श्री अंशु जैन 'अमर'

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४, टेलीफोन सं. (०५२२) २४५२०६४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -६७

वीर निर्वाण संवत् २५३५ मार्च, २००६ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तनः प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	ऋषभनाथ-स्तुति	मानतुङ्गाचार्य	६
३.	सम्पादकीय : जैन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ	श्री रमा कान्त जैन	७
४.	सतरहवीं शती के एक अंग्रेज द्वारा जैनों का वर्णन	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१०
५.	क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	११
६.	णमो लोए सव्व साहुणं	श्री अजित प्रसाद जैन	१२
७.	महावीर-वाणी		१४
८.	दो मुक्तक	श्री मदन मोहन वर्मा	१४
९.	Adoration in Jainism	डॉ. शशि कान्त	१५
१०.	श्रमणों की समस्या	भदन्त आनन्द कौसल्यायन	१९
११.	वीतरागी साये में पुरुषों द्वारा देवी के श्रृंगार का औचित्य	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	२५
१२.	सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	३०
१३.	अहिंसक धर्म एवं विज्ञान के आलोक में अपना आहार	श्री अजित जैन 'जलज'	३१
१४.	मनुष्य का स्वाभाविक आहार	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	३५
१५.	तपागच्छीय पूर्णचन्द्र सूरि के पट्टधर हेमहंस सूरि	डॉ. शिव प्रसाद	३६
१६.	डॉ. जगदीश चन्द्र जैन	श्री रमा कान्त जैन	४२
१७.	प्राचीनता का परिचायक आदीश्वरगिरि	श्रीमती सरोज सांधेलीय	४४
१८.	शूरसेन जनपद में जैन संस्कृति की विशेषताएं	डॉ. संगीता सिंह	४६
१९.	मंदिर महासंघ समाज का नेतृत्व कर सकता है	श्री संदीप कान्त जैन	४८
२०.	जरा सोचिए	श्री मेघराज जैन गर्ग	५०
२१.	डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन	श्री रमा कान्त जैन	५२

२२. आध्यात्मिक गीत — डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया — ५४
२३. 'हम हिंदी, बोलें हिन्दी'; 'दशलक्षण पर्व' और 'गिलास आधा भरा है' कृतियों पर एक समालोचनात्मक दृष्टि — श्री मदन मोहन वर्मा — ५५
२४. 'गिलास आधा भरा है', और 'दशलक्षण पर्व', पर अभिमत — श्री ओंकार श्री — ५८
२५. साहित्य-सत्कार :
दर्शनं मोक्षसाधनम्;
डॉ. ए. एन. उपाध्ये : जीवन-साहित्य सौरभ — डॉ. शशि कान्त — ६०
सुकुमाल सामिचरिउ; धनंजय नाममाला;
संयम-साधक-साधु; जैन दर्शन में कारण-कार्य
व्यवस्था; जीवन का उत्कर्षः जैन दर्शन की बारह
भावनाएं; तीर्थक्षेत्र पर्वादि वंदनाष्टक शतक (पूर्वार्द्ध);
जयन्तसेन सतसई भाग द्वितीय; अनुभव की कला
ही मोक्ष का द्वार है; मूकमाटी-मीमांसा;
मैं गधा हूँ; वर्णी पत्र सुधा; श्रीकलिंगीता;
आप बनें सर्वश्रेष्ठ; कत्लखाने : १०० तथ्य;
ज्ञान सागर जी की ज्ञान साधना; सत्यान्वेषी;
श्रायसपथ; सहज-आनन्द (पुनर्जन्म अंक);
जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर; प्रेरणा के दीप;
मेरी अमेरिका यात्रा — श्री रमा कान्त जैन — ६१
२६. आभार — ७४
२७. समाचार विविधा : — ७५
'मूकमाटी-मीमांसा का लोकार्पण; केलीफोर्निया में जैन मंदिर;
डॉ. प्रकाश चन्द्र जैन का अभिनन्दन; श्री मैनासुन्दर भवन, आरा का शताब्दी समारोह;
आदर्श विवाहः अनुकरणीय पहल; श्रवणबेलगोल में राष्ट्रीय प्राकृत संगोष्ठी;
विश्वशान्ति अहिंसा सम्मेलन एवं भ. पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक महोत्सव;
'द ताव ऑफ जैन साइंसेज' का लोकार्पण; शिखरजी महोत्सव; दिल्ली के महाबलीपुरम
तीर्थ में चरण स्थापना व महामांगलिक; श्री अजित प्रसाद जैन का पुण्य स्मरण;
भुशुण्डि साहित्य संस्थान में काव्य-संध्या; जैन-बौद्ध शास्त्रेषु तत्त्वविमर्शः संगोष्ठी;
जन्म दिन पर याद किये गये इतिहास-मनीषी; राष्ट्रीय संगोष्ठी;
डॉ सागरमल जैन का अमृत महोत्सव; राष्ट्रीय परिसंवाद;
श्री हरखचन्द नाहटा की स्मृति में डाक-टिकट; जैन मिलन लखनऊ
का स्वर्ण जयंती समापन समारोह; श्री महावीर जी का लक्खी मेला।
२८. अभिनन्दन — ८१
२९. निःशुल्क उपयोगी जैन वेबसाइट — ८४
३०. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को काव्यांजलि — डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत' — ८५
३१. शोक संवेदन — ८६
३२. पाठकों के पत्र — ८७
३३. भजन महावीर जयंती — श्री लूणकरण नाहर — ९५
३४. छपते-छपते — ९५

गुरुगुण-कीर्तन

प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल संघवी

प्रज्ञाचक्षु सुखलाल रहे, संघवी कुल के दीप।
भारतीय मनीषा के, मुकुटमणि ज्ञान-दीप।।

सौराष्ट्र के लिमली ग्राम में ८ दिसम्बर, १८८० ई० को जन्मे और अहमदाबाद में २ मार्च, १९७८ ई० को ९७ वर्ष की वय में दिवंगत हुए पं० सुलखलाल संघवी ने दृष्टिबाधिता के बावजूद स्व अध्यवसाय से विलक्षण प्रतिभा वाले विचक्षण बनकर बीसवीं शती ईस्वी की भारतीय मनीषा को गौरवान्वित किया था। उनके पिता संघजी तलणी श्रीमाली बीसा वंश के धाकड़ (धर्कट) गोत्रीय संघवी कुल के श्वेताम्बर जैन आम्नायी मध्यमवर्गीय व्यवसायी थे। और उनकी माता धर्मपरायण माणेक बेन थीं। चार वर्ष की अल्प आयु में माता का साया उनके सिर से उठ गया। तब उनका लालन-पालन दूर के सम्बन्धी सायला निवासी मूल जी काका ने किया। सातवीं कक्षा तक अध्ययन करने के उपरान्त वह अपने पैतृक व्यवसाय में लगे। श्रमप्रिय सुखलाल दुकान पर बैठने के साथ-साथ बाजार का कार्य करने, अनाज तहखाने में भरने आदि विविध व्यावसायिक कार्यों में शीघ्र ही पारंगत हो गये। प्रारम्भ से ही वह साहसप्रिय और जिज्ञासु वृत्ति वाले रहे। बचपन में खेले जाने वाले खेलों- गेंद-दड़ो, भ्रमरदड़ो, नवकांकरी, कबड्डी एवं दौड़-कूद आदि ग्रामीण खेलों में उन्हें आनन्द आता था। घुड़सवारी और तैराकी का भी शौक था। दैनिक धार्मिक क्रियाओं का पालन भी वह बाल्यावस्था से करते थे। पन्द्रह वर्ष की वय में उनका विवाह सम्बन्ध भी तय हो गया। किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। सन् १८९६ ई० में उन्हें भयंकर चेचक निकली जिसमें दुर्भाग्य से उनकी दोनों आँखें जाती रहीं और वह दृष्टिविहीन हो गये। उनके संसार में अंधकार छा गया। अब वह न तो दुकान पर बैठ सकते थे और ना ही विवाह करने का मनोबल जुटा सकते थे।

कहावत है कि हर बुराई में कुछ अच्छाई छिपी रहती है। किशोर सुखलाल जी की दृष्टि छिनना भी उनके लिये वरदान बन गई। उनके प्रज्ञा-चक्षु जागृत हो गये। सन् १८९८ ई० उनके जीवन में वरदान सिद्ध हुआ। वह श्वेताम्बर साधु दीपचन्द जी महाराज के सम्पर्क में आये। उनकी प्रेरणा से जैन शास्त्रों के अध्ययन और स्तवनों के पारायण में उनका मन रमने लगा। संस्कृत भाषा के माधुर्य ने उन्हें मोहित किया।

संस्कृत का विशाल साहित्य भण्डार और जैन आगम ग्रन्थों की संस्कृत टीकाएं उनकी साहित्य-साधना की सोपान बनीं। शतावधान विद्या और मंत्र-तंत्र सिद्धि की ओर भी उनका झुकाव हुआ और तत्सम्बन्धी कुछ प्रयोग भी उन्होंने किये, किन्तु उनसे शीघ्र ही विमुख हो वह अपनी अन्तर्प्रज्ञा की ओर उन्मुख हो गये।

सन् १९०२ ई० में श्वेताम्बर आचार्य विजय धर्म सूरि जी द्वारा काशी में 'यशोविजय जैन पाठशाला' की स्थापना किये जाने पर युवक सुखलाल जी वहाँ अध्ययन करने चले गये। वहाँ उन्हें अनेक जैन विद्वानों और साधुओं का साहचर्य मिला। उक्त पाठशाला में पाँच वर्ष तक अध्ययनरत रह स्व अध्यवसाय से सुखलाल जी न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि विविध विद्याओं में निष्णात हो गये। सन् १९०६ ई० में उन्होंने तीर्थराज सम्मेद शिखरजी की यात्रा की। 'नव्य-न्याय' और प्राकृत भाषा के गहन अध्ययन हेतु वह मिथिला गये और 'न्यायाचार्य' की उपाधि अर्जित की।

सन् १९१६ ई० के लगभग वह महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी के सम्पर्क में आये। गाँधी जी के 'कर्मयोग' दर्शन और उनकी विचारधारा से प्रभावित हो वह उनके राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहभागी बने। वह गांधीजी के साथ अहमदाबाद स्थित कोचरब आश्रम और तदनन्तर सत्याग्रह आश्रम साबरमती में भी रहे। इस बीच उनकी साहित्य-साधना निरंतर गतिमान रही। वह तीन मास कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्ति निकेतन में भी रहे।

जब पं० बालकृष्ण मिश्र बनारस ओरिएंटल कॉलेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए तब पं० सुखलालजी भी उक्त कॉलेज में भारतीय वांगमय एवं जैन दर्शन के आचार्य बने। तदनन्तर सन् १९२२ ई० में गांधीजी के आह्वान पर उन्होंने गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, में शिक्षण कार्य करना स्वीकार किया। उक्त विद्यापीठ में आने पर उन्होंने सह अध्यापक पं० बेचरदास जीवराज दोशी के साथ मिलकर छठी शती ईस्वी में हुए आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के न्याय विषयक ग्रन्थ **'सन्मति-प्रकरण'** अपरनाम **'सन्मति-तर्क'** और उस पर अभयदेव सूरि (९५०-१००० ई०) कृत **'तत्त्व-बोध-विधायिनी'** अपरनाम **'वादमहार्णव'** टीका का वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादन और गुजराती भाषा में अनुवाद विशद प्रस्तावना के साथ किया जो पाँच खण्डों में सन् १९२४-१९३१ ई० के मध्य गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, से प्रकाशित हुआ। प्रथम चार खण्डों में उसका नाम **'सन्मति-तर्क-प्रकरण'** और पांचवे खण्ड में **'सन्मति-प्रकरण'** रखा गया। इन पाँचों खण्डों के प्रकाशन के उपरान्त उस ग्रन्थ का

एक और लघु खण्ड गुजराती में निकालने की योजना बनी जिसमें मुख्यतः मूल कृति का परिचय तथा संक्षेप में मूल पाठ की विवेचनात्मक व्याख्या और पूर्व खण्डों की भांति संस्कृत टीका दी गई। वह कृति सन् १९३३ ई० में पूंजा भाई जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुई। पं० दलसुखभाई मालवणिया ने उस कृति का इंगलिश भाषा में रूपान्तर कराकर सन् १९३९ ई० में उसे प्रकाशित किया और उस संस्करण के अलभ्य हो जाने पर एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद, ने सन् २००० ई० में पुनः मुद्रण किया। **'सन्मति-तर्क'** के सुसम्पादन की विद्वज्जगत में भूरि-भूरि सराहना हुई।

सन् १९३३ ई० में पं० सुखलाल जी पं० मदनमोहन मालवीय के अनुरोध पर गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, में जैन दर्शन के व्याख्याता पद पर चले आये और वहाँ सन् १९४४ ई० तक कार्यरत रहे। उन्होंने भारतीय दर्शन की विभिन्न विचारधाराओं का गहन तुलनात्मक अध्ययन कर उनके मुक्ता-मणियों को संजोने का कार्य किया। सन् १९४४ ई. में वह भारतीय विद्या भवन, मुम्बई, में अवैतनिक व्याख्याता बने और सन् १९४७ ई० में वह अहमदाबाद श्री बी० जे० विद्याभवन में अवैतनिक व्याख्याता होकर आये और वहीं स्थायी रूप से बस गये।

दर्शन शास्त्र और संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान पं० सुखलाल जी बहुभाषाविद् थे। गुजराती तो उनकी मातृभाषा ही थी। उसके अतिरिक्त पालि, हिन्दी, मराठी और इंगलिश भाषा पर भी उन्हें अधिकार था। धर्म, दर्शन, साहित्य, सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों को लेकर उन्होंने अनेक कृतियों और असंख्य शोधपरक लेखों का प्रणयन किया। अनेक प्राचीन ग्रन्थों के वैज्ञानिक दृष्टि से सुसम्पादन का श्रेय उन्हें रहा। ऊपर उल्लिखित **'सन्मति तर्क'** के अतिरिक्त उन्होंने सिद्धसेन दिवाकर की न्याय विषयक एक अन्य कृति **'न्यायावतार'**, उमास्वामि (प्रथम शती ईस्वी के अन्तिम पाद अथवा द्वितीय शती ईस्वी के प्रारम्भ में) के **'तत्त्वार्थसूत्र'**, हेमचन्द्राचार्य (१२वीं शती ईस्वी) की **'प्रमाण मीमांसा'**, बौद्ध विद्वान धर्मकीर्ति (६३५-५० ई०) के **'हेतु बिन्दु'**, चार्वाक दर्शन की कृति **'तत्त्वोपप्लवसिंह'** और यशोविजय जी कृत **'जैन तर्क भाषा'** ग्रन्थ का टिप्पणियों एवं प्रस्तावना सहित सम्पादन किया। उनके द्वारा सम्पादित **'तत्त्वोपप्लवसिंह'** सन् १९४० ई० में, **'हेतु बिन्दु'** गायकवाड़ सिरीज में सन् १९४९ ई० में तथा **'प्रमाण मीमांसा'** का इंगलिश में **'Advanced Studies in Indian Logic and Metaphysics'** नाम से रूपान्तर सन् १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ।

पं० सुखलाल जी की ज्ञात अन्य चर्चित एवं प्रकाशित कृतियां कालक्रमानुसार निम्नवत् हैं:-

१. धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण (गुजराती, १९३२ ई०)

२. दीर्घ तपस्वी महावीर (१९३३ ई०)

३. भगवान नेमिनाथ और कृष्ण (गुजराती, प्रबुद्ध भारत, १५-११-१९४१)

४. भगवान ऋषभदेव और उनका परिवार (गुजराती, १९४२ ई०)

५. भगवान महावीर का जीवन : एक ऐतिहासिक दृष्टिपात (१९४७ ई०)

६. निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय (दो खण्डों में) (१९४९ ई०)

७. जैन धर्म का प्राण (१९४९ ई०)

८. भगवान महावीर की मंगल विरासत (गुजराती, १९५० ई०)

९. अन्तर्निरीक्षण (१९५१ ई०)

१०. जैन साहित्य की प्रगति (१९५१ ई०)

११. भगवान महावीर : उनके जीवन की विविध भूमिकाएं (गुजराती, १९५१ ई०)

१२. जैन संस्कृति का हृदय (१९५२ ई, वाराणसी)

१३. धर्म और समाज (वाराणसी)

१४. सन् १९५३ ई० में ओरिएन्टल कॉन्फ्रेन्स के अहमदाबाद अंधिवेशन में पठित शोध-पत्र 'भगवान पार्श्वनाथ की विरासत'

१५. **चार तीर्थंकर** (सन् १९५३ ई० में जैन संस्कृति संशोधन मंडल, बनारस, द्वारा प्रकाशित और पं० दलसुखभाई मालवणिया द्वारा सम्पादित इस कृति में पंडितजी के तीर्थंकर ऋषभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर विषयक ऊपर क्रमांक १, २, ३, ४, ५, ८, ११ व १४ पर उल्लिखित आलेख समाहित हैं)

१६. पंडितजी के 'आत्मा-परमात्मा' विषयक व्याख्यानों का संकलन '**अध्यात्म विचारणा**' (१९५६ ई०)

१७. सन् १९५८ से सन् १९६० ई० के मध्य पंडित जी द्वारा 'भारतीय तत्त्व विद्या', विषय पर गुजराती और हिन्दी में दिये गये व्याख्यानों का '**Indian Philosophy**' नाम से इंगलिश रूपान्तरण

१८. **'समदर्शी आचार्य हरिभद्र'** विषयक व्याख्यान (१९६६ ई०) तथा

१९. पंडित जी के अन्य शोधपरक निबन्धों का संग्रह तीन खण्डों में **'दर्शन एवं चिन्तन'** नाम से।

कुशल अध्यापक, व्याख्यान पटु, लेखनी के धनी पं० सुखलालजी की विद्वत्ता और प्रतिभा का सम्मान विद्वज्जगत द्वारा उनके जीवन में प्रभूत हुआ। वह क्रान्ति दृष्टा और सत्य-शोधक थे। अतः पाश्चात्य मनीषियों ने उन्हें ऋषि तुल्य माना और डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने उन्हें 'महाप्रज्ञ' संज्ञा दी। सन् १९४७ ई० में उन्हें विजयधर्मसूरि जैन स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

सन् १९५१ ई० में लखनऊ में सम्पन्न अखिल भारतीय प्राच्य विद्या कॉन्फ्रेस के १६वें अधिवेशन में 'जैन एवं प्राकृत विभाग' के वह सभापति बनाये गये। सन् १९५५ ई० में उनके जीवन के ७५वें वर्ष में मुम्बई में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन कर उन्हें पचहत्तर हजार रुपये की थैली भेंट की गई और उन्होंने उस द्रव्य से 'ज्ञानोदय ट्रस्ट' गठित किया। सन् १९५६ ई० में गुजरात विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। सन् १९५६ ई० में ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, ने उन्हें रुपये १,५०१/- का महात्मा गांधी पुरस्कार प्रदान किया। संस्कृत के एक विशिष्ट विद्वान के रूप में उन्हें सरकारी प्रमाण पत्र और रुपये ३,०००/- वार्षिक की पेन्शन भी प्राप्त हुई। सन् १९५७ ई० में भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। सन् १९५७ ई० में सरदार पटेल यूनीवर्सिटी, बल्लभ विद्या नगर, गुजरात, ने भी उन्हें पुनः डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। सन् १९७४ ई० में भारत सरकार ने पंडितजी को 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। सन् १९७५ ई० में वह 'विद्यावारिधि' विरुद से विभूषित किये गये।

प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल संघवी जी जैन धर्म, दर्शन और समग्र भारतीय दर्शन के क्षेत्र में किये गये अवदान के लिये सदैव स्मरण किये जायेंगे। उनका जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व भावी पीढ़ियों के लिये सतत प्रेरणास्रोत रहेगा। इस वर्ष २ मार्च को उनकी ३१वीं पुण्यतिथि है। उस अवसर पर उनका यह पुण्य स्मरण करते हुये हमारा उन्हें सादर नमन् है।

- रमा कान्त जैन

"वर्तमान जैन परम्परा भगवान् महावीर की विरासत है। उनके आचार-विचार की छाप इसमें अनेक रूप से प्रकट होती है, इस बारे में तो किसी ऐतिहासिक को सन्देह था ही नहीं। पर महावीर की आचार-विचार की परम्परा उनकी निजी निर्मिति है- जैसे कि बौद्ध परम्परा तथागत बुद्ध की निजी निर्मिति है-या वह पूर्ववर्ती किसी

तपस्वी की परम्परागत विरासत है? इस विषय में पाश्चात्य ऐतिहासिक बुद्धि चुप न थी। जैन परम्परा के लिये श्रद्धा के कारण जो बात असंदिग्ध थी उसी के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से एवं ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले तटस्थ पाश्चात्य विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया कि पार्श्वनाथ आदि पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के अस्तित्व में क्या कोई ऐतिहासिक प्रमाण हैं? इस प्रश्न का माकूल जवाब तो देना था जैन विद्वानों को, पर वे वैसा न कर सके। आखिर को डॉ० याकोबी जैसे पाश्चात्य ऐतिहासिक ही आगे आये, और उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन करके अकाट्य प्रमाणों के आधार पर बतलाया कि कम से कम पार्श्वनाथ तो ऐतिहासिक हैं ही। इस विषय में याकोबी महाशय ने जो प्रमाण बतलाये उनमें जैन आगमों के अतिरिक्त बौद्ध पिटक का भी समावेश होता है। बौद्ध पिटकगत उल्लेखों से जैन आगमगत वर्णनों का मेल बिठाया गया तब ऐतिहासिकों की प्रतीति दृढ़तर हुई कि, महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ अवश्य हुए हैं। जैन आगमों में पार्श्वनाथ के पूर्ववर्ती बाईस तीर्थंकरों का वर्णन आता है। पर उसका बहुत बड़ा हिस्सा मात्र पौराणिक है। उसमें ऐतिहासिक प्रमाणों की कोई गति अभी तो नहीं दिखती।"

*-पं० सुखलाल संघवी जी की पुस्तक **'चार तीर्थंकर'** में समाहित उनके आलेख 'भगवान पार्श्वनाथ की विरासत (एक ऐतिहासिक अध्ययन)' से।*

ऋषभनाथ- स्तुति

भक्तामर - प्रणत - मौलि- मणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पाप -तमो - वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा -
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्।।१।।
यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय - तत्त्व - बोधा-
दुदभूत- बुद्धि-पटुभिः सुर- लोक-नाथैः।
स्तोत्रैजगत्त्रितय -चित्त- हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

उपर्युक्त दोनों श्लोक भक्त कवि श्रीमानतुङ्गाचार्य (७ वीं शती ईस्वी) के कालजयी सुप्रसिद्ध **'भक्तामर स्तोत्रम्'** से उद्धृत हैं। जिनमें प्रथम जिनेन्द्र भगवान ऋषभदेव की स्तुति की गई है।

सम्पादकीय

जैन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ

मंदिरों में व अन्यत्र तीर्थंकर जिनदेव की जिन मूर्तियों और चित्रों का दर्शन करने का सुयोग होता है उनमें से अधिकांश पद्मासनस्थ मुद्रा की प्रतिमाएं और चित्र होते हैं। उन मूर्तियों और चित्रों में तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के केश प्रायः घुंघराले, सैट किये हुए तथा चेहरा-दाढ़ी-मूछ विहीन, क्लीन शेव्ड, युवावस्था का कान्तियुक्त और सौम्य मूर्तित व चित्रित रहा होता है। बचपन से यह सुनता-पढ़ता आया हूँ कि हमारे २४ तीर्थंकरों में से ५ को छोड़कर शेष ने तो काफी वय हो जाने पर पर्याप्त राजसिक और गार्हस्थिक सुखों का उपभोग करने के उपरान्त वैराग्य धारण कर जिन-दीक्षा ग्रहण की थी और तपश्चरण के उपरान्त कैवल्यज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर अर्हन्त-जितेन्द्रिय बन मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त दीर्घकाल तक जन-जन को आत्म कल्याण के लिये सम्बोधा था। और यह भी कि दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात वे प्रायः पूर्णतः निर्ग्रन्थ, दिगम्बर वेशधारी, वीतरागी, परीषहजयी और अपने तन के प्रति उदासीन रहे थे। मौसम और अवस्था का भी उनके शरीर और चेहरे पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा रहा होगा। इस परिप्रेक्ष्य में यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि क्या मूर्तियों और चित्रों में प्रदर्शित तीर्थंकर भगवन्तों का यह सौम्य रूप स्वाभाविक है या काल्पनिक?

जैन तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य धर्मों के इष्ट देवों, शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध और ईसा मसीह आदि की मूर्तियां और चित्र भी प्रायः सौम्य आकृति की ही दृष्टिगत होती हैं। ऐसा क्यों है, इस पर तनिक ध्यान देने पर स्थिति साफ हो जाती है। हर भक्त व्यक्ति अपने आराध्य को, इष्टदेव को, कुछ अपवादों को छोड़कर, सुन्दर-सौम्य रूप में ही देखना पसन्द करता है और उसकी इच्छानुरूप मूर्त-शिल्पी और चित्रकार उसके इष्टदेव-आराध्य को सर्वांग सुन्दर, सौम्य और युवा-कान्ति से युक्त प्रस्तुत कर देता है। जो व्यक्ति अपने को अनीश्वरवादी कहते या मानते हैं वे भी यदि सुरुचि सम्पन्न होते हैं तो अपने कक्ष और घर को सुन्दर चित्रों और मूर्तियों से सज्जित करना पसन्द करते हैं। इन बातों से एक बात साफ है कि आम आदमी हृदय से सुन्दरता-सौम्यता का पक्षधर है।

कहा जाता है कि आदिम युग में नर-नारी निर्द्वन्द्व निर्वस्त्र विचरण करते थे, किन्तु जब उनके मन को लज्जा-बोध हुआ उन्होंने अपना तन ढकना प्रारम्भ कर दिया। पेड़ों के पत्तों और छालों तथा जानवरों की खालों से चलते-चलते आज का मानव आधुनिकतम भांति-भांति के परिधानों से अपने तन को वेष्टित करने लगा है। भले ही शिशु नग्न पैदा होता है, बचपन में कुछ समय तक नंग-धड़ंग उछल-कूद करता है और प्रायः हर व्यक्ति अपने स्नानगृह में और दम्पत्ति अपने शयनकक्ष में नग्न हो जाते हैं, सभ्यता के प्रारम्भ से जब से मानव-मन में लज्जा-बोध जागृत हुआ, कुछ जंगली जातियों और पिछड़े क्षेत्रों को छोड़कर, आम आदमी किसी अन्य के सामने निर्वस्त्र जाने में सहज संकोच करता है। नारियों की रूप-सुधा का पान करने वाले नरों की भी आज के सभ्य समाज में नारियों के नग्न अथवा अर्द्धनग्न रूप में सार्वजनिक विचरण करने पर भृकुटि तन जाती है और उनके इस मुद्रा में चित्र आदि का प्रदर्शन अश्लील समझा जाता है।

वैराग्य भाव से जिन-दीक्षा ग्रहण कर परीषहजयी, जितेन्द्रिय, वीतरागी दिगम्बर वेषधारी बनने वाले साधु भगवन्तों की बात पृथक् है। भारत ही नहीं भारत के बाहर भी विश्व के अन्य देशों और मतों में नग्न साधु-सन्त महात्मा होते रहे हैं। भारत के नागा बाबा विख्यात ही हैं। ये सभी सन्त-महात्मा अपनी आम्नाय, सम्प्रदाय, भक्त समुदाय और शिष्य समुदाय के श्रद्धाभाजन होते आये हैं और होते रहेंगे, इसमें कोई विवाद नहीं है। किसी धर्म को मानना या न मानना, किसी की भक्ति करना या ना करना व्यक्तिगत आस्था का विषय है और इसका पालन करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक को है। किन्तु इस स्वतन्त्रता की सीमा वहीं तक है जहाँ तक वह किसी अन्य की भावना को आहत नहीं करती। हम सब सामाजिक प्राणी हैं और अपनी धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ सामाजिक मार्यादाओं से भी बंधे हुये हैं।

हमारे तीर्थंकरों ने अपनी मूर्तियां और चित्र बनवाने की स्वयं प्रेरणा दी थी, यह तो हमें विदित नहीं है। उनकी मूर्तियां और चित्र कब से बनने प्रारम्भ हुए, यह भी निश्चित रूप से बताना कठिन है। चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर के पश्चात उनके जो गणधर और असंख्य दिग्गज जैन आचार्य और मुनि महाराज बीसवीं शती ईस्वी से पूर्व हुए उनमें से कितनों ने अपनी मूर्तियां और चित्र बनवाये, यह भी ठीक से हमारे संज्ञान में नहीं है। किन्तु २०वीं शती ईस्वी से फोटोग्राफ का आविष्कार और प्रचलन होने के उपरान्त हमारे भगवन्त आचार्यों और मुनि महाराजों में भी अपने चि

खिंचवाने और उन्हें प्रदर्शित व प्रचारित कराने का चलन तेजी से बढ़ा है। मैं दिगम्बर जैन धर्मानुयायी परिवार में जन्मा हूँ और पारिवारिक संस्कारों के अनुसार दिगम्बर भगवन्त आचार्यों और सभी साधु-साध्वियों के प्रति स्वभावतः श्रद्धावनत हूँ। मुझे उनके चित्र खिंचवाने और उन्हें प्रदर्शित-प्रचारित किये जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु कभी-कभी कोई-कोई चित्र शालीनता की सीमा का लंघन कर जाते हैं और उन्हें देखकर आँखें लज्जा से नत हो जाती हैं। **'शोधादर्श'** पत्रिका के सम्पादन और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०, जो सभी आम्नायों की प्रतिनिधि संस्था है, द्वारा संचालित सार्वजनिक शोध-पुस्तकालय के प्रबन्धन से जुड़ा होने के नाते मुझे आये दिन अनगिनत पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से रूबरू होना पड़ता है। जब कभी समाज द्वारा प्रकाशित कोई ऐसी पुस्तक या पत्र-पत्रिका हाथ में पड़ जाती है जिसके आवरण पृष्ठ या भीतर के पृष्ठ पर प्रदर्शित साधु भगवन्तों के चित्र देखकर स्वयं अपनी दृष्टि लज्जा से नत होने लगे तब सोच में पड़ जाता हूँ कि उसे पुस्तकालय, जो मात्र दिगम्बर जैन धर्मानुयायी पाठकों तक सीमित नहीं है, अपितु समग्र जैन समाज और जैनेतर समाज के पाठक जिसके लाभार्थी हैं, को कैसे भेजूं। जैसा कि मैंने आरम्भ में ही व्यक्त किया है, सुन्दरता-सौम्यता-सुरुचि मानव का सहज स्वभाव है और यह कि दिगम्बरत्व तथा किसी धर्म विशेष का पालन व्यक्तिगत आस्था के विषय हैं। सामाजिक प्राणी होने और सामाजिक मर्यादाओं की परिधि में बंधे होने के कारण हमारे द्वारा शालीनता की सीमा का लंघन किया जाना अभीष्ट नहीं है। अतः जैन प्रकाशकों और सम्पादकों से मेरा विनम्र सुझाव है कि वे पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में धर्मातिरेक या गुरु-भक्ति के अतिरेक में यथासंभव ऐसे चित्र न देवें जो शालीनता की परिधि में न आते हों और दूसरों द्वारा उपहास का विषय बन जायें। ऐसा करने से पुस्तक या पत्र-पत्रिका की गरिमा में कोई कमी नहीं आयेगी, अपितु वह बढ़ेगी ही। आशा है, इस सुझाव पर समुचित ध्यान दिया जायेगा। इत्यलम्।

- रमा कान्त जैन

.....

सुन्दरता-सौम्यता-सुरुचि, जब हैं सहज स्वभाव।
तब पुस्तक-पत्रिकाओं में, क्यों हो रहा अभाव।।

सतरहवीं शती के एक अंग्रेज द्वारा जैनों का वर्णन

- डॉ० ज्योति प्रसाद जैन

सन् १६२४ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों ने हेनरी लार्ड नामक एक ईसाई पादरी को भारतवर्ष भेजा था। पाँच वर्ष तक यह पादरी गुजरात प्रान्त के सूरत बन्दरगाह में रहा। तदुपरान्त इंग्लैण्ड वापस जाकर सन् १६३० ई० में उसने **'भारतवर्ष के प्राचीन निवासी-बनियों का धर्म'** विषय पर अपनी पुस्तक प्रकाशित की थी।

यह व्यक्ति भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ था। अतः सूरत की अंग्रेजी कोठी के अध्यक्ष कैरिज के प्रभाव से कृतिपय नागर ब्राह्मणों की सहायता द्वारा तथा स्वयं देख सुनकर जो कुछ जानकारी उसने प्राप्त की उसी को उक्त पुस्तक में निहित किया।

इंडिया आफिस, लन्दन, के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० रेन्डल ने लिखा था कि "क्योंकि उस काल में सूरत नगर में जैनों की बहुतायत थी और वे वहां सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे, पादरी लार्ड ने भारतीय धर्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह अधिकांशतः जैन धर्म का ही वर्णन है। और यद्यपि उसने 'बनिया' शब्द का प्रयोग सामान्यतः सभी विभिन्न जातियों के (गैर-मुस्लिम) भारतीयों के लिये किया है, तथापि इस शब्द से उसका वास्तविक आशय जैन वणिकों-व्यापारियों से ही था।"

इस पादरी ने लिखा है कि इन भारतीयों के धर्म के आठ मूल सिद्धान्त हैं जिनमें अहिंसा सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि है। उसके पश्चात पाँचों इन्द्रियों के संयम पर बल दिया जाता है। इन्हीं दो सिद्धान्तों की उसने विशेष व्याख्या की है और इस संदर्भ में आवागमन की मान्यता का भी उल्लेख किया है। उपरोक्त बनिये (जैनी) जिन साधुओं को 'व्रती' कहते थे और मुसलमान जिन्हें 'सेवड़ा' कहते थे वे इस पादरी के अनुसार, सामान्य ब्राह्मणों से भिन्न एक विशेष प्रकार एवं उच्चकोटि के ब्राह्मण (साधु, विद्वान) थे। जैनी लोग ८२ जातियों में विभक्त थे। इनके ये विशिष्ट ब्राह्मण अनेक व्रत पालते थे, श्वेत ऊनी वस्त्र पहनते थे, अपना सिर खुला रखते थे, हजामत नहीं बनाते थे वरन् अपने केशों का अपने हाथों से लौंच करते थे, उनका सबसे बड़ा पर्व पर्यूषण (पुचेसन) कहलाता था, सामान्य ब्राह्मणों की अपेक्षा वे अपने धर्म के अधिक पक्के होते थे, समस्त जीव जन्तुओं की रक्षा में सदा तत्पर रहते थे, लंगड़े और अपाहिज पक्षियों के लिये उन्होंने एक अस्पताल खोला हुआ था। उनके साधुओं के कई गच्छ थे :- सांकड़-नो

मंदिर नहीं जाते थे और घर पर ही धार्मिक कृत्य करते थे। तपइ (तपागच्छी) जो मंदिर जाते थे। कर्थर्स (खरतरगच्छी) जो एकान्त में तपस्या करते थे। ओंड्केलइ (लोड्कागच्छी?)- जो मूर्तियों का विरोध करते थे। पुसलइ (पुस्तकगच्छी दिगम्बर)- जो इन सबमें अधिक कट्टर होते थे।

वास्तव में, उस काल में सूरतनगर न केवल भारत के पश्चिमी तट का एक प्रधान बन्दरगाह, विदेशी व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र, मुग़ल साम्राज्य की एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय ईकाई और एक जन-धन सम्पन्न विशाल नगर था वरन् जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण केन्द्र था। विभिन्न गच्छों के श्वेताम्बर साधुओं के अतिरिक्त दिगम्बर आम्नाय के नन्दिसंघ-बलात्कारगण-सरस्वती गच्छ अथवा पुस्तकगच्छ की एक महत्व पूर्ण भट्टारकीय गद्दी भी वहाँ विद्यमान थी और उस समय भ० वादिभूषण (दादिचन्द्र सूरि) के पट्टधर भ० महीचन्द्र सूरि (१६१६-६० ई०) पट्ट पर विराजमान थे। फलस्वरूप विभिन्न वर्णों एवं जातियों के दिगम्बर-श्वेताम्बर जैन जनों एवं व्यापारियों से यह नगर भरापुरा था। यही कारण है कि उक्त विदेशी लेखक ने जैनों को ही समस्त ग़ैरमुस्लिम भारतीयों का प्रतिनिधि समझ लिया।

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि पादरी लार्ड का वृत्तान्त ही किसी यूरोपियन-कम से कम अंग्रेज-द्वारा लिखा गया जैन धर्म और जैनों का सर्वप्रथम ज्ञात वृत्तान्त है (देखिए-झा कोमोमोरेशन वाल्यूम, पूना, १६३७, पृ० २७७-२६६)

(जैन संदेश शोधांक ४, १६ जुलाई, १६५६ से उद्धृत)

क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर

रिषभ नेमि पारस महावीर,
भरत बाहुबली राम कृष्ण वरवीर,
ये सब मानव तुझ जैसे ही,
क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर।।१।।

अन्य अनेक प्रबुद्ध मनीषी,
औ युग-युग के चेता कर्मवीर,
ना कुछ से बन गये सब कुछ,
क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर।।२।।

कोई किसी का क्या कर सकता,
विरले हैं जो समझें पर-पीर,
निज भाग्य तू स्वयं बना सकता,
क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर।।३।।

जैसी करनी वैसी भरनी,
भरले उर समता नीर,
दुख-सुख तो आते जाते,
क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर।।४।।

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन 'ज्योति'

णमो लोए सव्व साहुणं

-श्री अजित प्रसाद जैन

णमोकार महामंत्र की जैन धर्मावलम्बियों में वही मान्यता है जो वैदिक धर्मानुयायियों में गायत्री मंत्र की है, बल्कि उससे भी अधिक है। इस मंत्र को अनादि मूल मंत्र के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका रचयिता कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। इसमें किसी देवी, देवता, अलौकिक शक्ति या किसी तीर्थंकर विशेष की प्रशस्ति या वन्दना न होकर मोक्ष को प्राप्त सभी सिद्धों तथा मोक्ष मार्ग के प्रणेता व साधकों की वन्दना इस भावना से की गई है ताकि उनसे प्रेरणा लेकर हम भी मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होकर संसार के दुःखों से मुक्त होकर अक्षय सुख को प्राप्त कर सकें।

णमोकार महामंत्र जैन धर्म की दोनों महाधाराओं- दिगम्बर, श्वेताम्बर में समान रूप से मान्य है। दिगम्बर आम्नाय में इस महामंत्र का सर्व प्रथम उल्लेख **षटखंडागम** महाग्रंथ के प्रथम अधिकार **सत्प्ररूपणा** में मिलता है जो भगवन्त पुष्पदंताचार्य द्वारा रचित है तथा जिसका रचनाकाल विद्वानों ने सन् ७६ ई० निश्चित किया हुआ है। इस ग्रंथ में आचार्य भगवन्त ने णमोकार मंत्र को मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत किया है। श्वेताम्बर आम्नाय के ग्रथों में यह मंत्र आगम ग्रंथ **भगवई सुत्त** के मंगलाचरण में प्रयुक्त मिलता है। इस आगम ग्रंथ के वर्तमान रूप का संकलन देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण द्वारा वल्लभी की वाचना (सन् ४६६ ई०) के परिणाम स्वरूप किया गया था। श्वेताम्बर आम्नाय की एक प्राचीन मान्यता के अनुसार क्षमा श्रमण के पूर्व आचार्य वज्र स्वामी, जो एक देशीय द्वादशांग श्रुतधारी प्रज्ञा श्रमणों में अन्तिम थे तथा जिनका समय वीर नि० सं० ४६६ से ५८४ (ई० पू० ३१ से ५७ ई०) माना जाता है, इस श्रुत स्कन्ध के प्रथम उद्धारक थे। हमने अपने पूर्व लेख "णमोकार महामंत्र की ऐतिहासिकता पर दृष्टि" (**शोधादर्श** ८ में प्रकाशित) में ऐतिहासिक तथ्यों की विवेचना करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि यद्यपि **षटखंडागम** के प्रथम टीकाकार आचार्य वीरसेन स्वामी की दृष्टि में भगवन्त पुष्पदंताचार्य ही णमोकार महामंत्र के कर्त्ता प्रतीत होते हैं तथापि इसकी प्रबल संभावना है कि जिस प्रकार आचार्य भूतबली कृत **वेदना खंड** में "णमो जिणाणं" से प्रारम्भ लम्बा अनिबद्ध मंगल पाठ दिया गया है उसी प्रकार पुष्पदंत आचार्य कृत **सत्प्ररूपणा अधिकार** में मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत णमोकार मंत्र भी अनिबद्ध मंगल पाठ है तथा यह गणधर देव द्वारा ग्रथित मूल श्रुत

का स्कन्ध है। वस्तुतः यह महामंत्र समयातीत है तथा जैन मंत्र शास्त्र का मूल महामंत्र है।

णमोकार महामंत्र में पांच पद हैं। पांचवें पद "णमो लोए सव्व साहुणं" द्वारा लोक के सभी साधुओं की वन्दना की गई है। पहले चार पदों में अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य तथा उपाध्याय परमेष्ठि की वन्दना की गई है। इस महामंत्र के स्वरूप पर चिन्तन करते हुए मुझे यह कुछ विचित्र सा लगा कि इसमें साधुओं या साधकों के तीन वर्गों-आचार्य, उपाध्याय, साधु को अलग-अलग क्यों नमस्कार किया गया है; क्या 'णमो लोए सव्व साहुणं' में आचार्य व उपाध्याय परमेष्ठि का समावेश नहीं हो जाता।

मेरे विचार में इस महामंत्र में मोक्ष मार्ग के प्रणेता व प्रस्तोता परम गुरु देहधारी परमात्मा अर्हन्त परमेष्ठि, मोक्ष को उपलब्ध सिद्ध भगवान तथा मोक्ष के कारण स्वरूप रत्नत्रय-सम्यक् चारित्र के मूर्तिमान प्रतीक आचार्य परमेष्ठि, सम्यक् ज्ञान के मूर्तिमान प्रतीक उपाध्याय परमेष्ठि और सम्यक् दर्शन के मूर्तिमान प्रतीक साधु परमेष्ठि की वन्दना की गई है। सम्यक्दर्शन-ज्ञान सहित धारण किया हुआ चारित्र ही मोक्ष महल की सीढ़ी है, अतः साधकों में श्रेष्ठ महाव्रती आचार्य भगवन्तों को तीसरे पद में वन्दना की गई है। 'उपाध्याय' पद में सम्यक्ज्ञान के धारक व उपदेष्टा गुरु चाहे वे महाव्रती साधु हों या देश व्रती या अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ पंडित हों सबका समावेश होना चाहिए। इसी प्रकार "साहु" संज्ञा से सभी सम्यग्दृष्टी जीवों का बोध होना चाहिए चाहे वे महाव्रती साधु हों या अव्रती गृहस्थ साधक। लोक में साधु के अर्थ ऋजु स्वभावी, अल्प परिग्रही, सरल परिणामी, सज्जन पुरुष भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि जीवों में तो सज्जनता व सरलता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होती है।

किसी समय जैन धर्मावलम्बी गृहस्थ 'साहु' या 'साधु' के विशेषण से ही पुकारे जाते थे। बारहवीं शताब्दी में महाराज अनंगपाल तोमर के शासनकाल में दिल्ली (योगिनीपुर) के नगर सेठ जैन धर्मावलम्बी श्रेष्ठी नट्टल साहु का उल्लेख कविवर विबुध श्रीधर की रचनाओं में मिलता है। आज भी अनेक जैन बन्धु अपने नाम के आगे 'साहू' विशेषण लगाते हैं। हमारे एक सम्बन्धी अबसे ७०-७५ वर्ष पूर्व अपना उपनाम 'साधु' रखे हुए थे।

अतः मेरे विचार में 'णमो लोए सव्व साहुणं' पद में लोक के सभी सम्यग्दृष्टि या भेद विज्ञानी, सरल परिणामी व्यक्तियों की वन्दना की गई है चाहे वे गृहत्यागी साधु हों या अल्प परिग्रही गृहस्थ। महाकवि बनारसी दास जी ने ऐसे जीवों की वन्दना करते हुए कहा है-

भेद विज्ञान जगो जिनके घर, शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिव मारग में, जगमाहि जिनेश्वर के लघु नन्दन।।
सत्य स्वरूप सदा जिनप, प्रगटयो अवदात मिथ्यात निकन्दन।
सान्त दशा तिनकी पहिचान, करे कर जोरि बनारसी वन्दन।।

महात्मा गाँधी जी के प्रिय भजन "वैष्णव जन तेने कहिए जे पीर पराइ जाने रे ....." में परिभाषित वैष्णव जन में, गीता के स्थितप्रज्ञ सत्पुरुष में तथा जैन संस्कृति के समदृष्टी सम्यग्दृष्टि में मेरे विचार में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। महामंत्र के 'णमो लोए सव्व साहुणं' के द्वारा हम ऐसे सभी सत्पुरुषों की वन्दना करते हैं ताकि हमें भी उनके गुणों की प्राप्ति हो जाय।

(**शोधादर्श**-१२, अक्टूबर, १९९० से उद्धृत)

महावीर-वाणी

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइं।
धम्मु ण मढिय पएसिं, धम्मु ण मत्था-लुंचिइयं।।

बहुत पढ़ लेने से ही धर्म नहीं होता, पोथियों और पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, और सिर का केशलौंच करने से भी धर्म नहीं होता।

रायरोस वे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सौ धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ।।

राग और द्वेष को छोड़कर अपनी आत्मा में ही निवास करने को जिनदेव ने धर्म कहा है, और वही धर्म निर्वाण प्राप्त कराता है।

दो मुक्तक

१. अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग, सरल और सहज बनिए,
धैर्य और साहस का सम्बल पकड़कर आगे बढ़िए-
परिश्रम, लगन की डोर कसकर पकड़े रखना न भूलिए
और सच्चा इन्सान कहलाने का गौरव हासिल करिए।

२. विश्व में वही साहित्यकार पूजनीय और सराहनीय है,
जो साहित्य को नई दिशा देकर पहचान बनाता है।
वह दूसरों के लिए रास्ता खोलकर प्रेरणास्पद होता है,
खुद तो सन्तुष्ट होता ही है, औरों को भी सन्तुष्ट करता है।

-श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

ADORATION IN JAINISM

- Dr. Shashi Kant

Meaning

Adoration is intense love and reverence for a subject or object. It is equivalent to *bhakti* भक्ति, *puja* पूजा and *vandana* वंदना which may be rendered respectively as devotion, worship and obeisance. It is the cornerstone of all religious thinking. It is some thing that binds the followers to a particular deity, dogma or book, as also the adherents together in a congregation to shape it into an organised religion or denominational entity.

Bhakti is the emotion, and *puja* पूजा and *vandana* वंदना are its manifestations. *Bhakti* in its intensity converges on faith (sraddha, श्रद्धा, astha आस्था, darsana दर्शन) which should be blind to reason (*viveka* विवेक, *tarka* तर्क, *buddhi* बुद्धि). It presupposes inequality between the devotee and the subject or object of devotion. The devotee submits his or her self to the idol, and invokes the mercy or pleasure of the deity for well-being, *i.e.*, material or ethereal gain, as a sakha सखा (friend in whom one may confide) or *dasa* दास (slave with abject submission). This is universal among all the Indian religious systems in essence, terminology may differ. The Semitic systems appear to be more rigorous as regards faith and organisation.

Objective

Bhakti भक्ति, *jnana* ज्ञान and karma कर्म of the Vedicist systems may be equated with *darsana* दर्शन, *jnana* ज्ञान and *charitra* चारित्र of the Jain system. The ultimate in the former is merger into the Supreme Being (*Brahman*) and in the latter it is regaining the nascent Self (*Parmatman* परमात्मन्). Both recognise the eternal existence of the Being and its release from the cycle of transmigration as the *summum bonum*. In the Jain terminology, it is *Mukti* मुक्ति (liberation from transmigration), *Moksha* मोक्ष (release from bondage) or *Nirvana* निर्वाण (extinction or extinguishing of the material existence) of the Jiva जीव (Being) to regain its all luminous nascent pure form which is total consciousness (*chaitanya* चैतन्य) and all joy (*ananda* आनन्द), never to be shackled again, and is termed as the *Parmatman Siddha* परमात्मन् सिद्ध.

The Jain philosophy recognises the duality of *Jiva* जीव (Being) and *Ajiva* अजीव (non-Being or matter called *pudgala* पुद्गल). *Jiva* जीव is atman आत्मन् or consciousness, loosely translated as soul. It is bound by matter in the form of *Karma* कर्म which is not just action or act of doing - it is a metaphysical entity which is attracted or dis-attracted to the *jiva* जीव or *atman* आत्मन् and makes that suffer in the *samsara* संसार (cycle of births and rebirths). The *jiva* जीव can attain its pure nascent form by casting off

the karmic matter which is possible when it is *vitaraga* वीतराग , neither it has *raga* राग nor *dvesha* द्वेष, *i.e.*, when it is absolutely neutral, neither attracting nor repelling. That is the *Mukta* or *Siddha* state which is all-joy and all-consciousness. And that is the ultimate object of adoration in Jainism. It is an abstraction which cannot perhaps be cogently and logically expressed but can be experienced in spiritual mysticism beyond words.

Mode

In practice, *bhakti* is meant to beg and to get bestowed, as is evident in the Jain devotional literature - the *stuti* स्तुति, *stotra* स्तोत्र, *stava* स्तव, *bhakti* and *puja* lyrics or hymns composed in Prakrits, Apabhramsa, Sanskrit, Hindi and regional languages. But this proposition does not match with the principle that the ultimate reality can neither be affected by praise nor disaffected by derision, it can neither bestow nor take away. So, a mean is struck. The devotee begs only to revel in the virtues of the idol so as to be inspired to attain that ultimate state. The object of adoration is thus an ideal to emulate.

The ground realities of keeping the flock together or binding together the congregation, however, necessitated a more earthy approach. The masses could not be lured by the abstract or absolute. They wanted deities who could bestow boon, fulfil desire, and provide solace in distress. Communion also needed middle men. And the mass craving for the grotesque and picturesque also needed to be catered. Thus emerged the saintly class, a variegated pantheon and plethora of rituals as means of adoration in Jainism also.

Medium

The Jain religio-social system does not recognise a priestly class. The congregation (*samgha* संघ) has a monastic order consisting of male and female ascetics known as *muni* मुनि and *aryika* आर्यिका and the laity consisting of male and female followers known as *sravaka* श्रावक and *sravika* श्राविका. The extant literature, the earliest of which cannot be dated prior to the Christian era, glorifies the monastic male and enjoins on the laity to sustain the monastic order. The early writers belong to the monastic order which alone was the custodian of the *Tirthankara's* teachings; the lay wirters wrote only commentaries on the texts or composed devotional lyrics; analytical and critical approach was noticed in modernist scholars during the last century but soon it was counter-balanced by a vast production of literature by the monastics. The monastics have thus made themselves a special class for veneration and adoration among the Jains of all denominations.

The *Bhakti* or Adoration Hymns composed in the Prakrit language are attributed to Kundakunda of *circa* Ist century A.D. And those in the Sanskrit language are attributed to Pujyapada Devanandi of 5th century. It starts with *Siddha-bhakti* सिद्ध भक्ति, adoration to the ideal abstraction, the *summum bonum* of all spiritual discipline. Next is *Sruta-bhakti* श्रुत भक्ति which enjoins to have absolute faith in the word of sciptures as preached by the Tirthankara Arhat Kevalin Mahavira and handed down by the monastics of his order. Then follow *Charitra-bhakti* चारित्र भक्ति, *Yogi-bhakti* योगी भक्ति, *Acharya-bhakti* आचार्य भक्ति, *Pancha-paramesnthi-bhakti* पंचपरमेष्ठी भक्ति and *Tirthankara-bhakti* तीर्थंकर भक्ति which revolve round the theme of reverence to the monastic order. Thereafter Santi-bhakti शांति भक्ति, *Samadhi-bhakti* समाधि भक्ति and *Nirvana-bhakti* निर्वाण भक्ति, introduce some patterns for concentration and some motives for keeping up devotion. Lastly, *Nandisvara-bhakti* नंदीश्वर भक्ति and *Chaitya-bhakti* चैत्य भक्ति provide for means to sustain devotion by performing some rituals.

Stotra, *stava* and *stuti*, or the eulogistic lyrics, are as much a part of Jain Adoration literature as in other Indian systems and they are contemporaneous, too. The more popular are the *Swayambhu-stotra*, *Kalyanamandira-stotra* and *Bhaktamara-stotra*, marked by melody and fine composition in chaste Sanskrit, and cutting across the sectarian prejudices.

Objects

Arahanta अरहंत and *Siddha* are the primary objects of veneration and adoration in Jaininsm. *Arahanta*, by precept and example, inspires to follow the path to liberation (*mukti* or *moksha*). *Siddha* exemplifies the ultimate - the liberated soul. As evidenced by archaeology, in the early stages from a couple of centuries prior to the Christian era down to Ist-2nd century A.D. images of Arahanta only were installed. Later, gradually, the Arahanta was personified as the 24 Tirthankaras of the current cycle of time, beginning with Rishabha of the hoary past and ending with Mahavira who was born in 599 B.C. The Tirthankara images are identified by the distinguishing symbol on the pedestal, and lately they are also made in different colours.

A whole pantheon of attendant deities and complimentary and subsidiary deities grew up to cater to the basal cravings of common people - to whom one could beg and who could bestow reward as well as award punishment in folk-fancy. It does not have any relevance to the principle and ideal, but it was necessary to keep the flock together and so all the gods and goddesses and other objects of veneration in different times and climes were absorbed or assimilated so that an adherent may not transgress or wander elsewhere for fulfilling desire.

Manifestation

In the earlier times the recitation of eulogistic lyrics and hymns and the posture of obeisance seem to have been sufficient to manifest adoration. But gradually, during the last one thousand years or so, the worship ritual grew up and it was elaborated with picturesque ceremonials. Texts were also produced on iconometry and for installation of images in temples. All this has much in common with other Indian systems. Yet the wording underlines the distinctive principle.

Spots for pilgrimage (*tirtha-yatra* तीर्थयात्रा) were also defined and undertaking of pilgrimage was made an act of piety to ensure cohesion among the adherents. Temples and *Sthanakas* where the co-religionists may congregate, also serve the purpose of social cohesion. The *Sadhu* (male *Muni* and female *Aryika*) pose as the torch-bearers and elicit much veneration verging on adoration, notwithstanding their antics, from the credulous masses, and the reason therefor may be that most of the religious literature veers round the theme of sustaining and venerating the *Sadhu*.

Essence

To sum up, adoration in Jainism does not, in principle, mean propitiation of some deity but it is to attain the ultimate. The terminology and wording of the Jain adoration literature underscore this proposition, and that makes it distinct. In practice and as a mass base, however, it is not very much different from other Indian religious systems in terms of rituals, ceremonies and festivities, as also the stranglehold of monastics. The basics of religious life, and thus, of adoration, are the controlling of senses (*samyama* संयम), the restraining of desires (*tapa* तप) and the helping of needy and distressed (*dana* दान), and these are universal to all religions including Jainism. They make us rise above self-gain, sublimating ego and taking to a mental plane where we may be more useful to the society at large. If the present is meritorious, the life beyond need not bother us.

(Reproduced from the *Prabuddha Bharata*, January 2002 - Adoration Special Number, Vol. 107)

Jyoti Nikunj, Charbagh
Lucknow - 226 004

श्रमणों की समस्या

- भदन्त आनन्द कौसल्यायन

[यह लेख भारत जैन महामंडल वर्धा से सन् १९५१ में प्रकाशित पुस्तक "समाज और जीवन" से उद्धृत किया जा रहा है। पुस्तक के संपादक संकलनकर्ता श्री जमनालाल जैन हैं। लेखक बौद्ध धर्म के सुप्रसिद्ध विचारक भिक्षु थे। - सम्पादक]

आर्य-संस्कृति में जैन तथा बौद्ध परिव्राजक ही सामान्यतः 'श्रमण' कहलाते हैं। आर्य-संस्कृति की यदि दो शाखाएँ मानी जायें : वैदिक तथा अवैदिक; तो जैन तथा बौद्ध 'श्रमण' ही अवैदिक संस्कृति के प्रतिनिधि हैं।

'वैदिकों' के लिये 'अवैदिक' होना जैसे निग्रह तथा निन्दा का भी विषय हो सकता है, ठीक उसी तरह 'अवैदिकों' के लिये 'वैदिक' होना थोड़े उपहास का विषय है।

'वैदिक' धर्म का संन्यास-मार्ग कदाचित्, श्रमण संस्कृति की ही देन है। इसलिये जब हम 'श्रमणों की समस्या' की चर्चा कर रहे हैं तब प्रकारान्तर से सभी शास्त्र-सिद्ध परिव्राजकों की समस्या सामने आती है। 'श्रमण' और 'संन्यासी' में भेद करने का हमारा आग्रह भी नहीं है।

ऐसे भी विचारक हैं जो संन्यास-आश्रम को ही मात्र अप्राकृतिक मानते हैं। उनकी दृष्टि में किसी को भी कभी भी 'श्रमण' अथवा 'सन्यासी' नहीं बनना चाहिए। ऐसे विचारकों की बातें अभी रहने दें।

सामाजिक कारणों से, आर्थिक-कारणों से, नैतिक अथवा आध्यात्मिक कारणों से आज से ढाई हजार वर्ष से भी पहले श्रमण-संस्था की नींव पड़ी होगी। तब से उसने लगभग सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में स्थान पाया है।

हर संस्था के कुछ-न-कुछ नियम, कुछ-न-कुछ विनय (डिसिप्लिन) रहती है। श्रमण-संस्था की भी है। जैन श्रमणों की है। बौद्ध भिक्षुओं की है। उतनी व्यवस्थित न सही, किन्तु हिन्दु संन्यासियों की भी है ही।

आज हम 'श्रमणों की समस्या' पर किसी ऐसी सामाजिक दृष्टि से विचार नहीं करने जा रहे हैं, जिस प्रकार हम 'भिखमंगों की समस्या' पर विचार करते हैं। हम इस प्रश्न पर श्रमणों की अपनी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं।

श्रमणों की अपनी समस्या गहरी है। उसका 'धर्म' और 'जीवन' से सम्बन्ध है,

इसलिये वह कम-से-कम उनके अपने लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मैं अपने जैन 'श्रमण' और बौद्ध 'भिक्षु' मित्रों के जीवन से दो-एक उदाहरण देकर उस समस्या की ओर अंगुली-निर्देश करना चाहता हूँ।

सारनाथ (बनारस) बौद्ध-तीर्थ तो है ही, वह तीर्थंकर श्रेयान्सनाथ की भूमि होने से जैन-तीर्थ भी है। वहा एक जैन मंदिर है। प्रायः कुछ-न-कुछ लोग बौद्ध मंदिर के साथ जैन मंदिर के दर्शनार्थ भी आते ही रहते हैं। मैं सारनाथ में काफी समय रहा हूँ और अब भी मन का सम्बन्ध बना ही है। 'तथागत' की धर्म-चक्र-प्रवर्तन भूमि होने से किसी भी 'भिक्षु' का ही नहीं, किसी भी भारतीय का ही नहीं, विश्व के किसी भी नागरिक का उससे सम्बन्ध टूट ही कैसे सकता है? जब मैं सारनाथ में रहता था तब प्रायः रोज घूमने जाता। एक दिन शाम को चला जा रहा था कि उधर से एक जैन मुनि आते दिखाई दिए। उन्होंने पूछा :

"सारनाथ मंदिर कितनी दूर है?"

मंदिर उस स्थान से एक मील भी दूर नहीं रहा होगा, किन्तु थके हुए का योजन लम्बा हो ही जाता है। मैंने सोचा, यदि मैं इनके साथ वापिस लौट चलूँ तो इन्हें 'साथ' हो जाएगा और मैं बातचीत करके इनकी चर्या के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ नई जानकारी प्राप्त कर लूँगा। इनका रास्ता कटेगा और मेरा ज्ञान बढ़ेगा।

मुनिजी से कुछ ही दूर पर दो आदमी बहुत-सा सामान लिए आ रहे थे। उनकी ओर संकेत करके मैंने पूछा :

"यह आदमी आपके साथ है?"

"हाँ!"

"तो आप जब यात्रा में रहते हैं, तब आपकी भिक्षा की क्या व्यवस्था रहती है? हमने सुना है कि जैन मुनियों की ठण्डे-गर्म पानी के विषय में भी मर्यादा है।"

"हम जहाँ जाते हैं, भिक्षा कर लेते हैं।"

"आप अपने साथ के इन दो आदमियों से भोजन क्यों नहीं बनवा लेते?"

"हम अपने लिये इनसे भोजन नहीं बनवा सकते। हाँ, यह अपने निज के लिये भोजन बनाते हैं। उसमें से हम 'भिक्षा' ले लेते हैं।"

अब आप ज़रा विचार कीजिए कि इस द्राविड़-प्राणायाम का क्या अर्थ है? मुनि महाराज 'भिक्षा' ग्रहण करते हैं। वे उन्हीं दो आदमियों की बनाई हुई 'भिक्षा' ग्रहण करते हैं। वे दोनों आदमी जहाँ-जहाँ मुनि महाराज जाते हैं सामान लिये उनके

साथ-साथ चलते हैं! किसी न किसी श्रद्धालु सेठ ने मुनि महाराज के लिये ही यह व्यवस्था कर रखी है। यह सब होने पर भी मुनि महाराज को यह स्वीकार करने में अनौचित्य मालूम होता है कि वह भोजन उनके लिये बनता है।

आप इसे कदाचित् मुनि महाराज का 'ढोंग' कहेंगे। किसी के भी आचरण के लिए सहसा "ढोंग" शब्द का उपयोग करने से सरल कोई दूसरा काम नहीं। किन्तु हमें इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

मेरी समझ में मुनि महाराज "ढोंगी" नहीं थे। वे वैसा ही करने के लिये मजबूर थे। उनके जैसे मानसिक संस्कार थे और उनकी जैसी आर्थिक या भौतिक परिस्थिति रही उसमें वे और कुछ कर ही नहीं सकते थे। ठीक उन्हीं की परिस्थिति में कोई भी दूसरा आदमी और कुछ कर ही नहीं सकता।

वे मुनि थे। भिक्षा उन्हें मांगनी ही चाहिए। श्रमण-संस्कृति ने भिक्षा-संस्था की जो कल्पना की और उसका जो विकास किया उसमें मूल बात यही है कि संन्यासी समाज के लिए 'दूभर' न हो। उसका समाज पर कम-से-कम भार पड़े। यहाँ तक कि किसी को भी 'उसके लिए' भोजन न बनाना पड़े। गृहस्थ जो अपने लिये बनाये उसी में से मधुकरी-वृत्ति से साधु चार घरों से थोड़ा-थोड़ा लेकर अपना जीवन-निर्वाह कर ले। इसी दृष्टि से जैन श्रमणों की चर्या में यह उत्कृष्ट नियम है कि वह वही भोजन करें जो उनके लिए न बना हो। अब इस नियम के रहते मुनि महाराज "अपने लिए" उन आदमियों से भोजन बनवाने लग जाएँ तो उनमें तथा दो नौकरों को साथ-साथ लिए फिरनेवाले किसी भी सेठ-साहूकार में अन्तर ही क्या रह जाएगा?

प्रश्न होता है, तब वे जहाँ जाते हैं वहीं 'भिक्षा' क्यों नहीं मांग लेते? आज प्रायः भिखारी ही 'भिक्षुक' रह गए हैं। भिखारियों को जो और जैसा भोजन जैसे मिलता है उसे आज कौन श्रमण ग्रहण करने के लिये तैयार हैं? और सच्ची बात है 'श्रमण' को यदि 'भिक्षा' मिलती है तो पूज्य-बुद्धि से ही मिलनी चाहिए; कुछ दया-बुद्धि से नहीं। 'श्रमण' अपरिग्रही है, वह दरिद्र नहीं है। वह भिक्षु है; भिखमंगा नहीं है। जिस दिन श्रमण भिखमंगा हो जायेगा उस दिन उसकी तेजस्विता ही नष्ट हो जायेगी।

फिर मुनि -महाराज को 'पानी' भी तो ऐसा 'पक्का पानी'[१] ही चाहिये है जो उनके लिए गरम न किया गया हो! तब वे घर-घर भिक्षा मांग ही कैसे सकते हैं? परिणाम वही होगा, जिसका उक्त मुनि महाराज की चर्या में दर्शन हुआ है।

अब मैं अपने ही एक स्नेह-भाजन श्रमण महिन्द्रजी का उदाहरण लेता हूँ।

जैन-श्रमणों की तरह बौद्ध-श्रमणों से भी पास में पैसा न रखने की आशा की जाती है। श्रमणों की दोनों 'विनयों' में ही नहीं, सभी परिव्राजकों को रुपया-पैसा रखना वर्जित है। श्रमण भिक्षा-जीवी है। रोज की रोज भिक्षा मांग खाता है। पैसा उसके किस काम का? पैसा रखेगा तो संग्रह भी हो ही जायगा। उस के नष्ट होने का भय रहेगा और उस के सुरक्षित रखने की चिन्ता।

किसी भी भिक्षु अथवा श्रमण को क्या जरूरत पड़ी कि वह अपने आपको 'निन्यान्वे के फेर' में डाल व्यर्थ हैरान हो! इसीलिये श्रमण संस्था में प्रत्येक के लिये 'अपरिग्रही' रहना श्रेष्ठ नियम ठहराया गया है।

श्रमण महिन्द्र बर्मा से बौद्ध-दीक्षा लेकर आए हैं। नया मुल्ला बहुत अल्लाह-अल्लाह पुकारता है, यह एक सर्व व्यापक सिद्धांत है। बिचारे श्रद्धापूर्वक जितना ज्ञान है उस के अनुसार 'विनय' पालन करने की पूरी चेष्टा करते हैं। पैसा न रखने का नियम तो एक अत्यन्त सीधा-सादा नियम है, जो सारी श्रमण परम्परा को मान्य है। इन पंक्तियों का लेखक स्वयं वर्षों पैसा न रखने और रखने की उलझनों में उलझा रहकर आज किसी भी सामान्य आदमी की तरह पैसे का व्यवहार करने लग गया है। उस दिन सारनाथ में महिन्द्रजी ने कहा :

"मेरा कुछ पैसा अमुक ..... आदमी के पास है। वे जा रहे हैं। आप के साथ कोई आदमी हो तो उसे दिलवा दूँ।"

"आपका पैसा मैं भी ले सकता हूँ" कह कर मैंने वह अपने साथी गुणाकर को दिलवा दिया।

दूसरे दिन उनके दिल्ली के पास एक छोटी सी जगह तक जाने की व्यवस्था करनी थी। मैंने उसके पैसे ले वह व्यवस्था कर देने का भार अपने ऊपर लिया। स्टेशन पहुँचा। बाबू से पूछा- "आप एक टिकट दे देंगे?"

"अभी गाड़ी आने में देर है। एक घण्टे बाद मिलेगा।"

"टिकट मुझे इन स्वामीजी के लिये चाहिए। यह पैसा पास रखते नहीं। मैं इन्हें अभी टिकट ले देकर चला जाना चाहता हूँ।"

"तो लाइए, किन्तु कहाँ का चाहिए।?"

स्टेशन का नाम बताया। वह छोटा-सा स्टेशन! बाबू की रेलवे गाईड तक में नहीं ही मिल रहा था। मैं ढाई रुपये का एक नया टाइम-टेबल खरीद लाया। उसमें स्टेशन का नाम दिखा कर कहा- "यह स्टेशन है।"

वह छोटा-सा स्टेशन! उसकी मील संख्या नहीं दी थी! पता नहीं कितना किराया लगता है? वहाँ गाड़ी ठहरती है या नहीं? इन दो प्रश्नों को लेकर काफी परेशानी हुई। अंत में बाबू ने दो-दो स्वामियों के प्रभाव से प्रभावित होकर टिकट बना दिया।

मैं चाहता था कि महिन्द्रजी को रात को सुरक्षित सोने की जगह भी मिल जाए। स्थान सुरक्षित करने वाले क्लर्क से भेंट की। उसने कहा :

"गाड़ी आने पर ही हम कुछ कर सकते हैं। गाड़ी यहाँ से चलती होती तो अभी कुछ कर देते।"

"यह स्वामीजी पैसा नहीं रखते। मैं अभी जाना चाहता था। आप पैसा ले लेते। गाड़ी आने पर स्थान सुरक्षित कर देते।"

"यदि गाड़ी में स्थान न मिले तो मैं यह पैसा इनको लौटा दूँ?"

"अरे! यह पैसा रखते होते तब तो बात ही क्या थी! आप ऐसा करें, यह पैसा रख लें। मैं फिर आ जाऊँगा। यदि इन्हें स्थान न मिला तो आप यह पैसा मुझे लौटा दीजिएगा।"

महिन्द्रजी साथ-साथ यह सब देख सुन रहे थे। अब उनसे न रहा गया। वे छोटे बच्चे नहीं हैं। उन्होंने गृहस्थ जीवन में, फौज में ओवरसीयरी की है। उनके मन में छिपे हुए बुद्धिवाद ने उनकी भावना पर कड़ी चोट लगाई। वह चोट आँसू बनकर बहने लगी। बोले :

"भन्ते! मुझे क्षमा करें! मैं नहीं जानता कि यह शील-पालन है अथवा दुःशीलता है? आप को मेरे कारण इतना कष्ट हो रहा है!"

मैंने उन्हें ढांढस बंधाई :

"मामूली बात है। किसी भी नियम पालन में थोड़ी असुविधा होती ही है। हर नियम पालन के एक से अधिक पहलू होते हैं। आपको यह पहलू भी देखने को मिल रहा है। अच्छा ही है।"

अब भी महिन्द्रजी पैसा न रखने के उस नियम को निबाह तो रहे हैं, किन्तु मैं जानता हूँ कि उनके हृदय में एक स्थायी संदेह घर किए हुए है कि यह शील पालन है अथवा दुःशीलता!

श्रमण संस्कृति के दो सामान्य प्रतिनिधियों के जीवन से ली गई यह दोनों सामान्य घटनाएँ किस बात की ओर इशारा करती हैं? ये कौन सा प्रश्न हमारे सामने लाकर खड़ा करती हैं?

प्रश्न सीधा-सादा है। वह प्रश्न किसी भी चारित्र्यहीन, ढोंगी श्रमण को हैरान नहीं करता। किन्तु, जिसके जीवन में सच्चाई है, जिसके जीवन में श्रद्धा है, उसके सामने सचमुच यह बड़ा भारी प्रश्न है कि आखिर वर्तमान समय में उसके धर्म-जीवन का मापदण्ड क्या हो?

अभी कल-परसों जम्बूमुनिजी महाराज तथा उनके गुरुजी ने मुझसे मिलने आने की कृपा की थी। गुरुजी ने जो प्रश्न मुझसे पूछे वह ऐसे ही थे "रेल में चढ़ सकते हैं या नहीं? शाम को भोजन खा सकते हैं या नहीं ..... इत्यादि।"

उनके वे प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। वे बतलाते हैं कि आज के अनेक चिन्तक श्रमणों के लिए यह एक बड़ी भारी समस्या है कि वे रेल में चढ़ें अथवा नहीं? शाम को खाएँ अथवा नहीं?

किन्तु, मैं इसे दूसरी दृष्टि से देखता हूँ। मेरी जिज्ञासा यह है कि क्या एक 'मुनि' रेल में चढ़ने से 'मुनि' नहीं रहता और यदि वह रेल में नहीं चढ़े तो क्या यह कोई *ऐसी विशेष बात है जिसे किसी के भी धार्मिक जीवन का ऊँचा मापदण्ड माना जाय?*

'विनय' के सभी नियम साध्य हैं, साधन नहीं। क्या देशकाल के बदलने पर साध्य की सिद्धि के लिए बहुधा साधन बदलने नहीं पड़ते? कुछ लोगों का कहना है कि यदि कोई श्रमण 'विनय' नहीं पालन कर सकता तो उसे 'श्रमण' बनने की ही क्या आवश्यकता है? मेरी जिज्ञासा है कि क्या जीवन के धर्म रूप का मात्र प्रतिनिधित्व इन नियमों के पालन द्वारा ही होता है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि देशकाल की ओर ध्यान न दे जड़वत् किन्हीं नियमों को पालते रहना 'अधर्म' का ही द्योतक हो? प्रश्न नियमों के पालन कर सकने अथवा न कर सकने का नहीं है। प्रश्न *नियमों के पालन करने के औचित्य तथा अनौचित्य का है।*

'नियमों' को पालन करना और वर्तमान युग के सामान्य जीवन के माप-दण्डों के मुताबिक कौतुकागार की सामग्री बनाकर पड़े रहना एक रास्ता है।

'नियमों' को पालन करना उचित न समझने के कारण दीक्षा का ही त्याग कर देना दूसरा रास्ता है।

'नियमों' के पीछे जो भावना है उसे ग्रहण कर देश-काल के अनुसार उन नियमों का नये ढंग से पालन करना तीसरा रास्ता है।

श्रमणों का भविष्य इन तीन रास्तों में से एक सही रास्ता चुनने पर निर्भर करता है। यदि 'संघ' न चुन सके तो फिर व्यक्ति को ही चुनाव करना पड़ेगा।

देखें श्रमण-संस्था का भावी इतिहासकार क्या लिखने जा रहा है।

---

१. प्रासुक अथवा गरम किया हुआ या स्वाद बदला हुआ जल। - सं०

वीतरागी साये में पुरुषों द्वारा देवी के श्रृंगार का औचित्य

-डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल

संयम प्रकाश, पूर्वार्द्ध, प्रथम भाग, पृष्ठ २३२ की कंडिका (८) में उल्लेख है कि 'आर्यिकाओं की न तो मूर्ति पूज्य ही मानी गई है और न उसका स्तवन करने का विधान है।' पृष्ठ २३३ में **आचारसार** श्लोक ८६ का उद्धरण देकर कहा है कि आर्यिकाओं के देशव्रत ही होते हैं, यथा-

देश व्रतान्यितैस्तासामारोप्यन्ते बुधैस्तनः
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः।।

अर्थ : आर्यिकाओं के देशव्रत ही होते हैं, किन्तु उपचार से आचार्यों ने उनके महाव्रत मान लिए हैं। महाव्रत मान लेने का कारण यह है कि इससे उनकी सज्जाति का प्रकाश होता है। क्योंकि उत्तम जाति में उत्पन्न हुई महिला ही आर्यिका हो सकती है।

नारी जगत की उक्त व्यवस्था से यह स्पट है कि पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती (उपचार से महाव्रती) आर्यिकाओं की मूर्ति पूज्य नहीं होती और न उनका स्तवन किया जाता है। ऐसी स्थिति में असंयमी देवी-देवताओं की मूर्ति और उनका स्तवन करना आगमिक नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने **दर्शन पाहुड** में स्पष्ट कहा है 'अस्संजदं ण वन्दे।' **दर्शन पाहुड़** की गाथा २६ इस प्रकार है-

अस्संजदं ण वन्दे वतथ विहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणाएगो वि ण संजदो होदि।।

अर्थ : असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए। भाव संयम न हो और बाह्य में वस्त्र रहित हो वह भी वन्दनीय नहीं है। क्योंकि वह दोनों ही संयम रहित समान हैं इनमें एक भी संयमी नहीं है।

उक्त दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट है कि पद्मावती, ज्वाला मालिनि, चक्रेश्वरी आदि असंयमी और वस्त्र सहित (रागी-द्वेषी-मोही) होने के कारण उनका अभिषेक, पूजन, स्तवन आदि आगम विरुद्ध है। पंचामृत अभिषेक हिंसा का स्रोत होने के कारण उनका अभिषेक करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। जिनागम में १८ दोष

रहित वीतराग भगवान और पंच परमेष्ठी ही पूज्य हैं। फिर व्रती श्रावक अव्रती देवी या सम्यकत्वधारी/मिथ्यात्वी देवी, जो जैसा हो, की पूजा, स्तवन, श्रंगार क्यों करेगा?

सभ्य मानव जगत में पर स्त्री का स्पर्श भी वर्जित है। यही कारण है कि जब महिला जगत में अपराधों की वृद्धि हुई तब शासन को उन्हें गिरफ्तार करने पूछतांछ करने महिला पुलिस की नियुक्ति करनी पड़ी। जो कार्य सामान्य सभ्य जगत में वर्जित है वह कार्य धर्म के आचरण में कैसे किया जा सकता है। इस दृष्टि से देवियों की मूर्तियों का पुरुषों द्वारा अभिषेक कर उनका श्रृंगार करना लोक-मर्यादा एवं धर्माचरण के साथ संलग्न सदाचार के विरुद्ध है। पुरुष अविकार या सेवाभाव से भी जब किसी महिला को स्पर्श नहीं कर सकता तब भावों की आड़ में देवियों के अंगों का स्पर्श करना धार्मिक कृत्य कैसे हो सकता है? विचारणीय है। पूजा-पद्धति एवं पंथवाद के परे यह सार्वभौम स्वीकृत मानव समाज की स्थिति है उसे धार्मिक भावनाओं के आगोश में अमान्य या अग्राह्य नहीं किया जा सकता।

आगम में निर्देश है कि कोई भी आर्यिका किसी भी प्रकार से साधु की वैयावृत्य करने के लिए पाद-मर्दनादि के निमित्त से उसके शरीर का स्पर्श न करे; उसके पांव भी न धोवे ..... इस संबंध में आर्यिकाओं को काफी सतर्क रहना चाहिए अन्यथा ब्रह्मचर्य का ध्वंस हुए बिना नहीं रहेगा। (**संयम प्रकाश, पूर्वार्द्ध-प्रथम** पृष्ठ २२२)

आचारसार में इसकी मर्यादा भी निश्चित की है कि आर्यिका कितनी दूरी से आचार्य आदि की वन्दना करें। श्लोक २/८५ इस प्रकार है-

नमन्तिसूर्युपाध्याय साधुनार्या यथाक्रमम्।
पंचषटसप्तहस्थान्तरालस्थाः पशुराप्यया।।

अर्थ : आचार्य से पांच हाथ, उपाध्याय से छह हाथ और साधु सामान्य से सात हाथ दूर रहकर आर्यिकाएं गो आसन द्वारा उन आचार्य देवों की वंदना करती हैं। यहां आर्यिका पद दिया गया है, किन्तु उपचार से उपलक्षण से स्त्री मात्र का ग्रहण होता है।

जब आर्यिका और साधु एक-दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकते और आगमानुसार एक निश्चित दूरी बनाए रखना आवश्यक है तब अभिषेक के नाम से पुरुषों का देवी के कोमलांगों का स्पर्श करना कहां तक नैतिक/धार्मिक कहा जायेगा? विशेषकर तब जबकि सामाजिक परम्परानुसार सदाचार की दृष्टि से स्वपत्नी व्रतधारी व्यक्ति दूसरे

की पत्नी, भले ही वह देवी क्यों न हो, के अंग स्पर्श कैसे कर सकता है। क्या धार्मिक क्रिया लोक मर्यादा की सीमा के नीचे स्तर की हो सकती है? विचारणीय है।

शील के अठारह हजार भेद हैं। उनमें १७२८० भेद चेतन स्त्री (मनुष्णी, देवी और तिर्यन्ची) के हैं तथा ७२० भेद काष्ठ, पाषाण, चित्राम् रूप तीन अचेतन स्त्रियों के भेद हैं। शील के बिना भवसागर से पार नहीं होता। इस संबंध में यह विचारणीय है कि देवी और मनुष्यों के मध्य प्रवीचार (काम सेवन) के संबंध नहीं होते, ऐसी स्थिति में उनमें शील संबंधी दोष कैसे लग सकता है। पूज्य आचार्यश्री सूर्यसागरजी ने **संयम प्रकाश, उत्तरार्द्ध, द्वितीय भाग** के पृष्ठ ७१२ पर इसका समाधान दिया है जो इस प्रकार है-

'जब रामचन्द्र जी मुनि अवस्था में ध्यानारूढ़ थे, तब सीता का जीव सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ था उसने उनके पास आकर स्त्री के राग रूप कटाक्ष आदि भाव बताकर उनको चलायमान करना चाहा, रामचन्द्रजी तो किंचित्मात्र भी विचलित नहीं हुए, किन्तु कदाचित् भी चलित होते तो उनको देवांगनाकृत शील में दूषण लग जाता, इस प्रकार का दूषण संभव है।'

प्रश्नः क्या औदारिक वैक्रियिक शरीर का संसर्ग होता है?

उत्तर : सामान्य रूप से संबंध तो नहीं होता, किन्तु आशावानों को स्पर्शादिक इस प्रकार का दोष अवश्य लग जाता है। जैसे किसी पुरुष या स्त्री ने मंत्र द्वारा किसी देव या देवी का साधन किया वह आकर प्रगट होवे और उस व्यक्ति का चित्त चलायमान हो जावे तो मन और कार्य संबंधी दोष अवश्य लग जाता है इसमें संदेह नहीं।

समग्र दृष्टि से पुरुषों द्वारा देवी का अभिषेक और श्रृंगार अनुचित/अनैतिक है- आगमिक तो है ही नहीं। यह भगवान महावीर के शीलव्रत के विरुद्ध कार्यवाही है। प्रस्तुत प्रकरण में मनुष्य और देवियों के प्रवीचार और पूजा के औचित्य के संबंध में विचार करना अपेक्षित है।

देवों के प्रवीचार विषयक अवर्णवाद

तत्वार्थवार्तिक ६/१३ में दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण बताए हैं- 'केवलिश्रुतसंघधर्मदेवाऽवर्णवादो दर्शनमोहस्स (६/१३)।'

अर्थ : केवलि, श्रुत, संघ, धर्म और देवों का अवर्णवाद अविद्यमान दोषों के प्रचार दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है।

भट्टाकलंक देव ने ६/१३ के वार्तिक १२ में देवों के अवर्णवाद का वर्णन किया है, यथा-

सुरामांसोपसेवाद्या घोषणं देवावर्णवादः
सुराः मांसां चोपसेवन्ते देवाः
आट्ट (अट्टि) ल्यादिषुचासक्त चेतसः
इत्याद्याघोषणं देवावर्णवादः।

अर्थ : सुरा, मांस व काम सेवन आदि का दोषारोपण करना देवों का अवर्णवाद है। देव मांस खाते हैं, सुरा पान करते हैं, अहल्यादि में आसक्त चित्त थे; इत्यादि कथन करना देवों का अवर्णवाद है।

उक्त कथन का यही तात्पर्य है कि इन्द्र या देव मनुष्यणी पर आसक्त नहीं होते। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि मनुष्य देवियों पर आसक्त नहीं हो सकते और प्रवीचार (काम सेवन) की व्यवस्था के अभाव में देवी का अभिषेक और श्रृंगार करना पुरुषों का अधिकार हो गया। यदि ऐसा होता तो शील के ७२० अचेतन स्त्री के भेदों में देवी के काष्ठ, पाषाण, चित्रामू रूप भेद सम्मिलित नहीं होते। काष्ठ, पाषाण (उपचार से धातु आदि) एवं चित्र में देवी रूप स्त्री का स्पर्श वर्जित है। विकृत बौद्धिक व्यायाम से प्रवीचार/अप्रवीचार का अन्यथा अर्थ ग्रहण कर देवी अंग स्पर्श का मार्ग प्रशस्त नहीं किया जा सकता। ब्रह्माजी का पुत्री पर मोहित होने का दृष्टान्त पुरुषों की अदम्य वासना को रेखांकित करता है उसे विस्मृत कर पावनता तर्क देना सारहीन है।

धरणेन्द्र की तुलना में देवी की पूजा का औचित्य :

पद्मावती देवी की उपासना का आधार देवी द्वारा भगवान पार्श्वनाथ का उपसर्ग दूर करना है। इस कारण वह संकट मोचक मानी जाने लगीं। इस पर विचार करें? आचार्य गुणभद्र ने **उत्तर पुराण**, पर्व ७३, श्लोक १३६-१४० में कथन किया कि- 'अवधिज्ञान से उस उपसर्ग (कमठ के उपसर्ग) को जानकर धरणेन्द्र पृथ्वी से निकला। वह दैदीप्यमान रत्नों वाले फण मण्डल से सुशोभित था। वह धरणेन्द्र भगवान को अपने फणामण्डल से आवृत्त करके ढक कर खड़ा हो गया और उसकी देवी उस फणावली के ऊपर अपना वज्रमय छत्र धारण करके खड़ी हो गई।'

उक्त कथन के अनुसार मुनिराज पार्श्व का उपसर्ग निवारण धरणेन्द्र ने किया। उसी ने अवधिज्ञान से उपसर्ग को जाना। पद्मावती देवी ने धरणेन्द्र का अनुकरण

किया और अपने पति की रक्षा की। ऐसी स्पष्ट स्थिति में मुनिराज पार्श्व के उपसर्ग निवारक धरणेन्द्र देव हुए। यदि किसी का बहुमान या सम्मान हो तो उसके पात्र धरणेन्द्र देव हैं न कि पद्मावती देवी। मनुष्य की यह फितरत है कि वह अपनी संज्ञाओं की पूर्ति हेतु धर्मक्षेत्र में भी अव्यवस्था एवं विकृति पैदा कर देता है। पद्मावती ने अपने पति धरणेन्द्र की रक्षा की और उसके उपकार के प्रतिदान में हम धरणेन्द्र को विस्मृत कर देवी पद्मावती की पूजा/श्रृंगार करने लगे। धरणेन्द्र को यह कितना अटपटा लगता होगा। कोई भी भला व्यक्ति अपनी पत्नी को दूसरों (पुरुषों) के द्वारा श्रृंगारित होते नहीं देख सकता। पर्यायगत विवशता के कारण धरणेन्द्र देव को यह सब सहन करना पड़ रहा है और एक हम हैं कि इस अनैतिकता को हम धार्मिक कृत्य मानकर अपने को महिमा-मंडित/महापंडित मान रहे हैं। सबकी अपनी-अपनी भवितव्यता है।

उपसंहार

जैनधर्म-दर्शन आत्म-विज्ञान का धर्म है। जिसका लक्ष्य मोह-राग-द्वेष का अभाव कर वीतरागी सर्वज्ञ स्वरूप परमात्मा होना है। पं० टोडरमलजी के शब्दों में 'अब जिनमत में तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है इसलिए कहीं बहुत रागादि छुड़ाकर थोड़े रागादि कराने के प्रयोजन का पोषण किया है; कहीं सर्व रागादि मिटाने के प्रयोजन को पोषण किया है; परन्तु रागादि बढ़ाने का प्रयोजन कहीं नहीं है, इसलिए जिनमत का सर्व कथन निर्दोष है। ..... लोक में भी एक प्रयोजन का पोषण करने वाले नाना कथन कहे उसे प्रमाणित कहा जाता है और अन्य-अन्य का प्रयोजन का पोषण करने वाली बात करे उसे बाबला कहते हैं।' (**मोक्षमार्ग प्रकाशक**, अध्याय ८, पृष्ठ ३०३)

जैन परम्परा में वीतरागता की प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट है। उसके लिए आदर्श रूप में अरहंतादि की पूजा, स्तवन, आराधना आदि स्वीकार की है। लौकिक कामना की पूर्ति और रागादि-मिटाने-का-कार्य परस्पर विरोधी कार्य है। इसी कारण जिनमत में रागी देवी-देवताओं, गुरुओं और शास्त्रों की उपासना का निषेध है और मात्र वीतरागी एवं संयमी गुरुओं की आराधना-उपासना मान्य की है। पंचपरमेष्ठियों में आर्यिका सम्मिलित न होने के कारण उनकी पूजा भक्ति भी वर्जित है। ऐसी स्थिति में किसी असंयमी देवी की पूजा, अभिषेक, श्रृंगार आदि करना वीतरागी परम्परा के प्रत्यक्ष विपरीत है। यह जिनशासन बाह्य कार्य कहा जा सकता है। अंतरंग में रागादिक मिटाने वाला व्यक्ति भला लौकिक कामना से राग-वृद्धि करने वाला कार्य क्यों करेगा? ऐसा करने वाला बाबला (पागल) ही कहलाता है। फिर लोक की मर्यादा के विरुद्ध कोई

व्यक्ति किसी दूसरे की पत्नी का अभिषेक और श्रृंगार कैसे कर सकता है? यह कार्य तो बाबले व्यक्ति भी नहीं करते।

भरत चक्रवर्ती एवं सम्राट चन्द्रगुप्त के १६-१६ स्वप्नों में एक बात सामान्य है कि हुण्डावसर्पिणी के पंचम काल में कुदेवों की मान्यता पूजा होगी और मनुष्य नीच व्यंतर आदि देवों में अधिक श्रद्धा करेंगे। यह भविष्यवाणी सार्थक लगती है। जब हम देखते हैं कि जिनागम के विद्वान एवं जिनदीक्षाधारी जिनशासन की प्रभावना के नाम पर व्यय-साध्य विशाल पोस्टरों द्वारा सामान्यजन को भ्रमित करने हेतु पद्मावती देवी आदि के अभिषेक एवं श्रृंगार आदि का व्यापक प्रचार एवं समर्थन कर रहे हैं। यह कालदोष एवं पूर्वसंस्कारों का ही प्रभाव है; साथ ही जिनधर्म, श्रुत, संघ और केवलि का अवर्णवाद भी है। सभी को अपना-अपना अंतरंग टटोलकर निर्णय करना चाहिए कि क्या वे वास्तव में वीतरागी भगवान महावीर के शासन के प्रति निष्ठावान हैं? श्रद्धा/धर्म की स्वतंत्रता सभी को है, लेकिन धर्म-क्षेत्र में बावलापन कर उसे विकृत करने का अधिकार किसी को नहीं है। किसी विवेकवान, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को ऐसा करना भी नहीं चाहिए। देवियों की पूजा स्वतंत्र पृथक् धर्म स्थापित करके भी की जा सकती है, वीतरागी धर्म के साये में यह क्रिया असंगत और विरोधी लगती है। सुधीजन गंभीरता पूर्वक विचार कर समाज का मार्गदर्शन करें। इस आलेख का उद्देश्य किसी की श्रद्धा/भावना को आहत करना नहीं है।

-बी-३६६, ओ० पी० एम० कालोनी, अमलाई

सामयिक परिदृश्य

क्षणिकाएं

आर्यिकाओं से आचार्य, उपाध्याय और साधु के मध्य दूरी
क्रमशः पांच, छह, सात हाथ निर्धारित शास्त्रों में हमारे।
असंयमी गृहस्थों के लिये नहीं निर्धारित कोई दूरी उनमें,
संग-संग उठते-बैठते नर-नारी, रहते संयमी सारे।।१।।

गृहस्थ रहते हैं संयमी, लोकलाज के काज।
साधुओं के लिये करें, शास्त्र में हम इलाज।।२।।

असंयमी गृहस्थ रखते स्वयं अपने पर कन्ट्रोल।
संयमी साधुओं को शास्त्र करते हैं कन्ट्रोल।।३।।

अशुचिता की नहीं करते कोई परवाह साधु हमारे।
मलधारी कहलाने में करते गर्व, निर्मल हैं साधु सारे।।४।।

-रमा कान्त जैन

शोधपत्र-

अहिंसक धर्म एवं विज्ञान के आलोक में अपना आहार

- श्री अजित जैन 'जलज'

विज्ञान अनेक बार जाने-अनजाने में सुख के स्थान पर दुख, विकास के स्थान पर विनाश का कारण भी बन जाता है। आइंस्टीन ने कभी नहीं चाहा था कि उनकी खोज से लाखों लोगों का नाश हो, न ही नोबेल ने डायनामाइट का अविष्कार आतंक के लिये किया था। इसी प्रकार डॉ. जगदीश चन्द्र बसु ने जब वनस्पतियों पर प्रयोग किये तो उन्हें इस बात का अनुमान भी नहीं होगा कि उनकी खोजों को इतने अलग अर्थों में लेंगे। बसु के विचार पर भ्रम इतने अधिक हैं कि लोगों ने इनका मनमाना अर्थ लगाकर अपनी सुविधानुसार ढाल लिया है। सबसे दुखद तथ्य तो यह है कि जिस खोज को अहिंसक शाकाहारी बड़ी शान से महिमामंडित करता है उसे ही माँसाहारी समुदाय अपने हितों में तर्कपूर्ण ढंग से प्रयोग करता है। अतएव सूक्ष्मतम अहिंसा के सटीक निरूपणकर्ता जैनधर्म की आहार संबंधी अवधारणाओं के संदर्भ में 'वनस्पतियों में जीवन' पर वैज्ञानिक विवेचन कर भ्रम निवारण करना मुझ जैसे वनस्पति विज्ञान के शोधार्थी का परम कर्त्तव्य बन ही जाता है।

१. वनस्पतियों में जीवन और बसु-

ऐसा-प्रचारित किया जाता है कि वैज्ञानिक बसु ने सर्वप्रथम वनस्पतियों में जीवन की खोज की थी, परन्तु अब तक वनस्पति विज्ञान के स्नातकोत्तर स्तर के अध्ययन काल में मुझे यह खोज कहीं भी नहीं मिल सकी। आमतौर पर बसु के बारे में हिन्दी की पुस्तकों में पाठ दिये जाते हैं।

वस्तुतः बसु ने वनस्पतियों की संवेदनशीलता पर प्रयोग किये थे। जन्तुओं और वनस्पतियों में मुख्य अंतर संवेदनओं की गुणवत्ता का ही है जिस पर अभी भी अनवरत रूप से अनुसंधान चल रहे हैं।

वनस्पतियों में जीवन की अवधारणा प्राचीन काल से है। हजारों वर्ष पूर्व अरस्तु वनस्पतियों में आत्मा का अस्तित्व मानते थे। हिन्दू धर्म ग्रंथों में तुलसी, पीपल आदि को देवताओं जैसा आदर दिया जाता रहा है और वृक्षों की महिमा बताई गई है।

२. जैनागम और वनस्पतिया –

जैन धर्म में षट्कायिक जीवों की चर्चा की गई है। वनस्पतियों के अलावा पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु में भी जीवन माना गया है।

जैन ग्रंथों में वनस्पतियों को मनुष्य के समान ही जीवधारी माना गया है।

३. वनस्पति विज्ञान और वैज्ञानिक–

अरस्तु ने ईसा से तीसरी और चौथी शताब्दी पूर्व जीवित वस्तुओं को पौधों और जन्तुओं में वर्गीकृत करने का प्रयास किया था। अंग्रेज प्रकृतिविद् जॉन रे ने सत्रहवीं शताब्दी में किसी भी जीवित वस्तु के लिये (स्पेसीज-प्रजाति) शब्द प्रदान किया और उन्होंने योरोप में हजारों वानस्पतिक प्रजातियों का संग्रह किया। कैरोलस लीनियस ने १८ वीं शताब्दी में जीव जगत को पादप जगत एवं जन्तु जगत में बांटा।[१]

इनके अलावा अन्य अनेक वैज्ञानिकों ने डॉ. बसु के पूर्व वनस्पतियों में जीवन की अनेक क्रियाओं के बारे में विस्तृत निष्कर्ष प्रस्तुत किये। अतः हमें यह भ्रम पूर्णतः मिटा देना चाहिये कि बसु ने सर्वप्रथम वनस्पतियों में जीवन सिद्ध किया था।

४. भयानक भ्रम–

जिस प्रकार जैन ग्रंथों में वनस्पतियों को मनुष्य तुल्य बताया है उसी प्रकार बसु ने वनस्पतियों को भी सामान्य प्राणियों की तरह बताया है।[२] इससे मांसाहारियों को यह भ्रम हो गया कि जब अन्य पशु-पक्षियों की भांति ही पेड़-पौधे भी हैं तो शाकाहार और माँसाहार में अंतर क्या है? इस तरह के विभिन्न अनुसंधान आते रहे हैं कि वनस्पतियों पर भी विभिन्न क्रियाओं का प्रभाव होता है तथा ये अपनी भावनाऐं भी प्रदर्शित करती हैं। ऐसे शोधों की शुरुआत डॉ. बसु ने की थी। माँसभक्षी पौधों की खोज ने तो माँसाहारियों के मन में से जानवरों के माँस एवं वनस्पतिजन्य शाकाहार भेद को और भी भ्रमित कर दिया।

इस भ्रम को बढ़ाते हुये विश्वप्रसिद्ध कलाकार 'सत्यजीत रे' ने अपनी कहानी 'सेप्टोपस की भूख' में माँसभक्षी पौधे सेप्टोपस को किसी खूनी दरिंदे की तरह चित्रित किया है।[३]

यह भयानक भ्रम अभी भी अधिकांश माँसाहारियों के मन में बसा हुआ है और इसी भ्रम के चलते क्रूरता का चक्र सतत् गतिमान है।

५. भ्रम का वैज्ञानिक तार्किक एवं धार्मिक निराकरण-

क- सहज तर्क- दो वस्तुओं की तुलना करते समय उनमें पाई जाने वाली कुछ समानताओं के कारण उन्हें एक समान नहीं माना जा सकता-

१- वनस्पतियों, पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों में समान रूप से जीवन व्याप्त है, परंतु तीनों समान नहीं हैं।

२- कोयला, ग्रेफाइट और हीरा तीनों कार्बन के रूप हैं, एक ही तत्व से बने हुये हैं फिर भी इनको एक समान नहीं मान सकते।

३- मूलभूत जैविक तत्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटिन, वसा सभी जीवधारियों में होते हैं।

४- जैविक तत्वों के घटक कार्बन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, जीव एवं अजीव दोनों में होते हैं, परंतु जीव और अजीव पूर्णतः अलग हैं।

५- सभी जीवों में आत्मा होती है, परन्तु सब समान नहीं हैं। इसी प्रकार वनस्पतियों और जन्तुओं में कुछ समानताएं होने पर भी इनमें मूलभूत अंतर बहुत ज्यादा हैं इसी से इन्हें पूर्णतः अलग-अलग माना गया है।

ख- धार्मिक मत- जैन धर्म में वनस्पतियों को स्थावर की श्रेणी में रखा है जबकि अन्य सभी जन्तु त्रस जीवों के अंतर्गत आते हैं। यहां पर त्रस जीवों को पुनः दो से लेकर पंच इन्द्रिय तक में वर्गीकृत किया गया है। पंचेन्द्रिय जीवों को पुनः सैनी-असैनी से विभाजित किया जाता है जिनमें से मनुष्य सर्वोपरि सर्वोत्कृष्ट प्राणी माना गया है जो कि परम पद परमात्मा बनने तक में सक्षम है।

अहिंसा का न्यूनतम स्तर वनस्पति सेवन में समाहित है। वनस्पतियां संभवतः पूर्वोपार्जित कर्मों का उपभोग मात्र कर पाती हैं। प्रतिरोध करने का अधिकार इन्हें नहीं है। जीवन निर्वाह के लिये आहार के रूप में यह अपरिहार्य है। जैन धर्म में वनस्पतियों के उपयोग को भी क्रमशः परिमित किया गया है। वस्तुतः समस्त महापुरुषों, संतों एवं ग्रंथों का सोचा-समझा जीवन-सार यही है कि शाकाहार ही अपना आहार है।

ग- वैज्ञानिक तथ्य- जीव विज्ञान भी जीव जगत को दो वर्गों 'पादप' एवं 'जन्तु' में ही वर्गीकृत करता आया है। हालांकि अब इनको पांच भागों में बांट दिया गया है। एक कोशिकीय, बहुकोशीय सूक्ष्म जगत के अलावा फफूंद को अलग कर दिया गया है। ये सभी पादप जगत से कमतर हैं जबकि जन्तु जगत इन सबसे अलग उन्नत जीव समूह है। जन्तु जगत की मुख्य विशेषता संवेदनाओं के वाहक तंत्रिका तंत्र का पाया जाना है। जन्तु जगत में केंचुआ से लेकर कीट वर्ग तक अकशेरूकी जीवों तक तंत्रिका

तंत्र क्रमशः विकसित होता जाता है। इसके पश्चात कशेरू की जीवों में तंत्रिका तंत्र का और भी अधिक विकसित रूप पाया जाता है जिसकी चरम परिणति मनुष्य के रूप में होती है।

विज्ञान के अनुसार सौर ऊर्जा का सर्वाधिक सार्थक उपयोग वनस्पतियां ही करती हैं तथा जन्तु पूरी तरह से इन्हीं पर निर्भर है। अतएव सीधे वनस्पतियों के सेवन से ऊर्जा का न्यूनतम क्षय होता है जबकि पशु-पक्षियों का भक्षण करने वाले खाद्य श्रृंखला में कई गुना ज्यादा ऊर्जा बर्बाद करते हैं। तथ्य स्पष्ट है कि यदि विश्व के अधिकांश व्यक्ति शाकाहारी हो जाते हैं तो दुनिया से खाद्यान्न, जल संकट इत्यादि समाप्त हो जायेंगे। माँसभक्षी पौधों के कुछ अंग इस प्रकार रूपान्तरित हो जाते हैं कि कीड़े या छोटे जन्तु इनमें फँस जाते हैं तथा पौधे इन्हें यांत्रिक रूप से अवशोषित करते हैं। रेलवे स्टेशनों पर जिस प्रकार इन्सैक्ट किलर के द्वारा कीड़े मरते हैं उससे थोड़ी उन्नत जैविक प्रक्रिया कीट भक्षी पौधों में पाई जाती है, परन्तु इस आधार पर इन्हें जन्तु जगत के समकक्ष समझना पूर्णतः हास्यास्पद है।

घ- अमोघ अस्त्र-सत्य से साक्षात्कार- भ्रम का मूलाधार जैन ग्रंथों की भांति वैज्ञानिक बसु द्वारा वनस्पतियों को पशु-पक्षियों और मनुष्यों के समतुल्य मानना है। अतः इन्हीं की मूल मान्यताओं को आगे देखा जाये।

जैन धर्मानुसार पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, उसी के द्वारा वे जानते हैं। इन जीवों को स्थावर कहते हैं। मिट्टी में कीड़े आदि जीव तो हैं ही, किन्तु मिट्टी, पहाड़ आदि स्वयं पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर का पिण्ड है। इसी तरह जल में यंत्रों के द्वारा दिखाई देने वाले अनेक जीवों के अतिरिक्त जल स्वयं जलकायिक जीवों के शरीर का पिण्ड है। यही बात अग्निकाय आदि के विषय में भी समझनी चाहिये।[४]

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जैन धर्म वनस्पतियों को मिट्टी, पानी, हवा, आग जैसी अजीवित समझी जाने वाली वस्तुओं के साथ रखता है और आश्चर्यजनक रूप से वैज्ञानिक बसु भी इसी विचारधारा पर सतत् रूप से अग्रसर थे।

एक बार रॉयल सोसायटी के सेक्रेटरी सर फोस्टर माइकेल विख्यात वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु की प्रयोगशाला देखने गये।

बसु ने उन्हें अपने कुछ आलेखन दिखाये। फोस्टर ने कहा- क्या यह वास्तव में एक पेशी अनुक्रिया वक्र नहीं है?

(पेशियां विकसित जंतुओं में होती हैं। उनकी एक निश्चित क्रिया विधि होती है।)

बसु ने कहा- "क्षमा करें, किन्तु यह धात्विक रांगे (टिन) की अनुक्रिया है।" [५] स्पष्टतया बसु अजीवित समझे जाने वाले टिन आदि धातुओं में जीवन के सूत्र सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे।

अंततः- समग्रता में सोचकर भली भांति विश्लेषण से साफ हो जाता है कि बसु की वनस्पति विषयक खोजें शाकाहार पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाती हैं, परन्तु इस तथ्य को व्यवस्थित रूप से प्रचारित-प्रसारित करने की आवश्यकता है।

साथ ही अपने अहिंसक आहार को सर्व स्वीकार्य बनाने के लिये समस्त अहिंसा प्रेमी संस्थाओं, संतों एवं प्रचारकों को वनस्पतियों के भेद-प्रभेदों पर वाद विवाद न करके शाकाहार को सम्मिलित रूप से सशक्त बनाना चाहिये।

संदर्भः-

१. Biology XI. II March 1996 N.C.E.R.T. New Delhi P. 160

२. **तीर्थंकर-** जैन जैविकी विशेषांक, फरवरी-मार्च १९८६, हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कालोनी, कनाडिया रोड, इन्दौर, आवरण पृष्ठ द्वितीय

३. **तेरह अनुपम कहानियां-** १९९८, नेशनल बुक ट्रस्ट इडिया ए-५, ग्रीन पार्क नई दिल्ली ११००१६

४. **जैन धर्म-** पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, २००३, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फर नगर, पृ. १०१

५. **तीर्थंकर,** जैन जैविकी विशेषांक पृ. २३

- अध्यापक वनस्पति विज्ञान, वीर मार्ग, ककरवाहा, टीकमगढ़ (म.प्र.)

मनुष्य का स्वाभाविक आहार

मनुष्य शरीर की संरचना, उसके मुँह, दाँतों, हाथ की अँगुलियों एवं नखों और पाचन-तन्त्र की बनावट के आधार पर प्रसिद्ध शरीर-रचना शास्त्री एवं वैज्ञानिक मनुष्य को तृण-कुशाचारी पशुओं की भाति वनस्पत्याहारी अथवा शाकाहारी प्राणियों में परिगाणित करते हैं, मांसाहारी प्राणियों में नहीं। किंग्सफोर्ड, पौशेट, वैश्न, कुवियर, लिन्नयस, लारेन्स प्रभृति अनेक पाश्चात्य विशेषज्ञों का मत है कि मात्र शाकाहार ही मनुष्य की प्रकृति और उसके शरीर-तंत्र की भीतरी एवं बाहरी संरचना के सर्वथा अनुकूल है।

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

(भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ में)

तपागच्छीय पूर्णचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमहंससूरि

- डॉ. शिव प्रसाद

प्रतिमालेखीय साक्ष्यों में पूर्णचन्द्रसूरि के शिष्य हेमहंससूरि, हेमहंससूरि के शिष्य हेमसमुद्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि का प्रतिमा प्रतिष्ठापक के रूप में उल्लेख करते हुए उन्हें तपागच्छीय बतलाया गया है, इसके विपरीत तपागच्छीय परम्परा में कहीं भी इन आचार्यों का नामोल्लेख तक नहीं मिलता। ऐसे में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत आलेख में इसी भ्रम के निवारण का प्रयास किया गया है :

वि.सं. १४५३ में प्रतिष्ठापित और आज शांतिनाथ जिनालय, नमकमंडी, आगरा में संरक्षित धर्मनाथ की धातु प्रतिमा पर प्रतिमा प्रतिष्ठापक आचार्य के रूप में तपागच्छीय पूर्णचन्द्रसूरि के शिष्य हेमहंससूरि का नाम मिलता है। पूरनचन्द जी नाहर ने इस लेख की वाचना दी है जो इस प्रकार है :

।। सं० १४५३..... शु. ३ शनौ श्रीमाल माधलपुरा गोत्रे सा. केला पुत्रेण सा. तोलाकेन नरपाल श्री पालेत्यादि पुत्रयुतेन श्री धर्मनाथ बिंबं कारितं प्र. तपागच्छे श्री पूर्णचन्द्रसूरिपट्टे श्री हेमहंससूरिभिः

जैनलेखसंग्रह, भाग २, लेखांक १४८६

इसके अतिरिक्त वि.सं. १४६५ से १५१३ तक के विभिन्न प्रतिमा लेखों में हेमहंससूरि का नाम प्रतिमा प्रतिष्ठापक के रूप में मिलता है और प्रायः इन सभी लेखों में इन्हें तपागच्छीय बतलाया गया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

क्र. संवत्	संदर्भ ग्रन्थ
१. १४६५ माघ वदि १३	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक ६१६,
२. १४६६ चैत्र सुदि १३	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक १६१७.
३. १४३६ कार्तिक सुदि १५	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक ६४१.
४. १४७५ मार्गशीर्ष वदि	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक १२४०.
५. १४८५ माघ वदि ४ बुधवार	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक १३१४.
६. १४८५ ... वदि ५	वही लेखांक ७२६.
७. १४८६	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक ६५८.
८. १४८७ माघ सुदि ३	**प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक ५१.
६. १४६० वैसाख वदि ६	**जैनलेखसंग्रह**, भाग १, लेखांक ४२६ (इस लेख में गच्छ का नाम निर्देशित नहीं है।)
१०. १४६० फाल्गुन सुदि ६	वही, भाग २, लेखांक १३२६.

११. १४९६ वैसाख सुदि १२	वही, भाग २, लेखांक १४८१.
१२. १४९८ फाल्गुन वदि १०	वही, भाग २, लेखांक १३६७.
१३. १५०१ ... वदि ६ बुधवार	वही, भाग २, लेखांक १४८२.
१४. १५०३ ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक ८६५.
१५. १५०३ ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	वही, लेखांक १४३३.
१६. १५०३ मार्गशीर्ष वदि १०	वही, लेखांक १५१२.
१७. १५०४ फाल्गुन वदि ११	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक ११४७.
१८. १५०७ वैसाख वदि ...	**शत्रुंजयगिरिराजदर्शन**, लेखांक ३४९.
१९. १५१० चैत्र वदि ४ शनिवार	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक ११५२.
२०. १५११ माघ वदि ९	वही, भाग २, लेखांक १४०१.
२१. १५१२ फाल्गुन वदि ५	**प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक १४.
२२. १५१३ पौष सुदि ८	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक १०८९.
२३. १५१३ पौष सुदि ८	वही, भाग २, लेखांक १२६६.
२४. १५१३ पौष सुदि ८	वही, भाग २, लेखांक १३७४.

तपागच्छीय अभिलेखीय साक्ष्यों में हेमहंससूरि के पट्टधर के रूप में हेमसमुद्रसूरि और हेमसमुद्रसूरि के पट्टधर के रूप में हेमरत्नसूरि का नाम मिलता है। इनका विवरण इस प्रकार है :

हेमहंससूरि के पट्टधर हेमसमुद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण

१. १५१७ मार्गशीर्ष सुदि २ शनिवार	**प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, भाग १, लेखांक५६९
२. १५१७ माघ सुदि १० सोमवार	वही, भाग १, लेखांक ५७३
३. १५१८ माघ सुदि २ शनिवार	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक १२२६
४. १५२१ वैशाख सुदि १३ सोमवार	वही, लेखांक १२९३
५. १५२१ माघ सुदि १२ बुधवार	**जैनलेखसंग्रह**, भाग २, लेखांक ४४३
६. १५२२ माघ सुदि २ गुरुवार	**प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, भाग२, लेखांक १२०
७. १५२८ वैशाख वदि ६ सोमवार	**बीकानेरजैनलेखसंग्रह** लेखांक १२४९

हेमसमुद्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण

१. १५३३ माघ सुदि ६	**प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, भाग १, लेखांक ७६४

२. १५३३ माघ सुदि ६ **बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, लेखांक ११९१
३. १५३७ मार्गशीर्ष सुदि १२ **जैनलेखसंग्रह**, भाग १, लेखांक ३५३

उक्त अभिलेखीय साक्ष्यों से यही सिद्ध होता है कि पूर्णचन्द्रसूरि, इनके शिष्य हेमहंससूरि, हेमहंससूरि के शिष्य हेमसमुद्रसूरि और हेमसमुद्रसूरि के शिष्य हेमरत्नसूरि तपागच्छीय आचार्य हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि तपागच्छीय साहित्यिक साक्ष्यों में उक्त आचार्यों का कहीं उल्लेख मिलता है या नहीं।

तपागच्छ से सम्बद्ध साहित्यिक साक्ष्यों-ग्रन्थ प्रशस्तियों और पट्टावलियों में कहीं भी पूर्णचन्द्रसूरि, उनके शिष्य हेमहंससूरि, हेमहंससूरि के शिष्य हेमसमुद्रसूरि और हेमसमुद्रसूरि के शिष्य हेमरत्नसूरि का किसी भी रूप में नाम नहीं मिलता है।[1] ऐसी स्थिति में उक्त आचार्यों को कैसे तपागच्छीय माना जा सकता है जबकि उपरोक्त अभिलेख साक्ष्यों में उन्हें तपागच्छीय कहा गया है। इस भ्रमपूर्ण स्थिति के समाधान हेतु हमें अन्यत्र प्रयास करना होगा।

पूर्वमध्ययुगीन श्वेताम्बर श्रमणसंघ के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग बृहद्गच्छ[2] से उद्भूत गच्छों में नागपुरीयतपागच्छ[3] भी एक है। इस गच्छ की मान्यतानुसार बृहद्गच्छ के सुप्रसिद्ध आचार्य वादिदेवसूरि के एक शिष्य पद्मप्रभसूरि द्वारा नागौर में उग्र तप करने के कारण वहां के शासक ने वि.सं. ११७४ या ११७७ में उन्हें "नागौरीतपा" विरुद प्रदान किया। इस घटना के आधार पर पद्मप्रभसूरि की शिष्य संतति नागपुरीयतपागच्छीय कहलायी।[4]

यद्यपि उक्त घटना एक उत्तरकालीन कल्पना है क्योंकि वि.सं. १५४२ से पूर्व नागपुरीयतपागच्छ का उल्लेख करने वाला कोई भी साक्ष्य आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है फिर भी इतना निश्चित है कि आचार्य वादिदेवसूरि के शिष्य पद्मप्रभसूरि की शिष्य परम्परा स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ी। इस परम्परा में हरिषेण, सुप्रसिद्ध रचनाकार रत्नशेखरसूरि[5], चन्द्रकीर्तिसूरि[6], हर्षकीर्तिसूरि[7], **ऋतुसंहारटीका** के रचनाकार अमरकीर्ति[8], अकबर के दरबार में सर्वप्रथम सम्मान प्राप्त करने वाले जैनमुनि उपाध्याय पद्मसुन्दर[9] आदि प्रभावक मुनिजन हो चुके हैं।

आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि द्वारा वि.सं. १६२३ (सन् १५६७ ई.) में रचित **सारस्वतव्याकरणदीपिका**[10] की प्रशस्ति में रचनाकार द्वारा लम्बी गुरु-परम्परा दी गयी है, जो इस प्रकार है-

वादिदेवसूरि

पद्मप्रभसूरि

प्रसन्नचन्द्रसूरि

गुणसमुद्रसूरि

जयशेखरसूरि

वज्रसेनसूरि

हेमतिलकसूरि

रत्नशेखरसूरि

पूर्णचन्द्रसूरि

(प्रेम)(हेम) हंससूरि

रत्नसागरसूरि हेमसमुद्रसूरि हेमरत्नसूरि

सोमरत्नसूरि

राजरत्नसूरि

चन्द्रकीर्तिसूरि (वि.सं. १६२३ में **सारस्वतव्याकरणदीपिका** के रचनाकार) अभिलेखीय साक्ष्यों में उल्लिखित पूर्णचन्द्रसूरि, उनके शिष्य हेमहंससूरि, हेमहंससूरि के शिष्य हेमसमुद्रसूरि और हेमसमुद्रसूरि के शिष्य हेमरत्नसूरि का नागपुरीयतपागच्छ की उपरोक्त गुरु-परम्परा की तालिका में न केवल नाम मिलता है बल्कि उनका क्रम भी उसी प्रकार मिल जाता है। इस आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अभिलेखीय साक्ष्यों में उल्लिखित उपरोक्त मुनिजन तपागच्छीय नहीं बल्कि नागपुरीयतपागच्छीय हैं जिसकी उत्पत्ति संबंधी कथानक भी प्रायः तपागच्छ के ही समान है।

सन्दर्भः

१. मुनिसुन्दरसूरिकृत **गुर्वावली** (रचनाकाल वि.सं. १४६६/ई.स. १४१०), **यशोविजय जैनग्रन्थमाला**, ग्रन्थांक ४, वाराणसी वीरसम्वत् २४३७; मुनि प्रतिष्ठासोम, **सोमसौभाग्यपट्टावली** (रचनाकाल वि.सं. १५२४/ई.स. १४६८), मुनि दर्शनविजय, संपा. **पट्टावली समुच्चय,** प्रथम भाग, श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २२,

वीरमगाम १६३३ ई., पृष्ठ ३५-४०; उपा. धर्मसागर, **"श्रीतपागच्छपट्टावली-स्वोपज्ञवृत्ति सहित"**, (रचनाकाल वि.सं. १६४५/ई. स. १५६०); **पट्टावली समुच्चय,** प्रथम भाग, पृष्ठ ५७ और आगे, मुनि कल्याणविजय गणि, संपा. **पट्टावलीपरागसंग्रह,** जालोर १६६६ ई., पृष्ठ १४५ और आगे, मुनि जिनविजय द्वारा संपादित **विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह** (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ५३, मुम्बई १६६१ ई.) में भी तपागच्छ और उसकी कुछ शाखाओं की पट्टावलियां प्रकाशित हैं। मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैनगुर्जरकविओ,** द्वितीय संशोधित संस्करण, भाग ६, (संपा. डॉ. जयन्त कोठारी, मुम्बई १६८७ ई.) के पृष्ठ ४४-११४ पर भी तपागच्छ और उसकी विभिन्न शाखाओं की पट्टावलियां प्रकाशित हैं। शिवप्रसाद, **तपागच्छ का इतिहास,** भाग १, खण्ड १, वाराणसी २००० ई., पृष्ठ ६-४५।

२. शिवप्रसाद, **"बृहद्गच्छका संक्षिप्त इतिहास"**, **पं. दलसुखभाई मालवणिया अभिनन्दनग्रन्थ,** **"जैनविद्या के आयाम"**, खंड-३, हिन्दी विभाग, पृष्ठ १०५-१७।

३. शिवप्रसाद, **"नागपुरीय तपागच्छ का इतिहास"**, **श्रमण,** वर्ष ५०, अंक १-३, जनवरी-मार्च १६६६ ई. पृष्ठ १०७-१२१।

४. **"नागपुरीयतपागच्छ पट्टावली"**, मुनि जिनविजय, संपा.-**विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह,** पृष्ठ ४८-५१।

"जैन श्रमणों के गच्छों पर संक्षिप्त प्रकाश" अगरचन्द भंवरलाल नाहटा, **यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ,** आहोर ई. सन् १६५८, पृष्ठ १५१।

५. रत्नशेखरसूरि द्वारा रचित **सिरिवालचरिय (श्रीपालचरित्र)** रचनाकाल वि.सं. १४२८/ई. सन् १३७२, **लघुक्षेत्रसमासस्वोपज्ञवृत्तिसहित, गुरुगुणषट्त्रिंशिका, छंदकोश, सम्बोधसत्तरीसटीक, लघुक्षेत्रसमासटीक, गुरुस्थानकक्रमारोह** (रचनाकाल वि.सं. १४४७), **सिद्धयन्त्रचक्रोद्धार** आदि विभिन्न रचनायें उपलब्ध हैं।

६. चन्द्रकीर्तिसूरि द्वारा रचित **सारस्वतव्याकरणदीपिका** (रचनाकाल वि.सं. १६२३/ई. स. १५६७), **धातुपाठविवरण, छन्दकोशटीका** आदि कई कृतियां मिलती हैं।

७. हर्षकीर्तिसूरि ने अपने गुरु द्वारा रचित **सारस्वतव्याकरणदीपिका** की प्रथमादर्श प्रति तैयार की।

श्रीचन्द्रकीर्ति सूरीन्द्रपादाम्भोज मधुकरः। **श्रीहर्षकीर्तिरिमां** टीकां प्रथमादर्शकोऽलिखत्।।८।।

A.P. Shah, Ed. *Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss. Muni Punya Vijaya's Collecion,* Part II, No. 5974, Pp. 376-377.

हर्षकीर्तिसूरि द्वारा रचित **योगचिन्तामणि** अपरनाम **वैद्यकसारोद्धार, शारदीयनाममाला, अजितशांतिस्तव, धातुपाठ, उपसर्गहरस्तोत्र, नमस्कारमंत्र, बृहद्शांतिस्तव, लघुशांतिस्तव, सिन्दूरप्रकर, धातुतरंगिणी** आदि कृतियां भी मिलती हैं।

८. P.K. Gode, "Exact Date of Amara Kirti, the Author of a commentary on the Ritu Samhar of Kali Dasa" *Studies In Indian Literary History,* Singhi Jain Series, No. 37, Bombay, 1953 A.D., Pp. 73-75.

V. Raghavan, Ed. *New Catalogue Catalogorum, Volume I, Madras, 1968 A.D., P.317.*

९. अगरचन्द नाहटा, **"उपाध्याय पद्मसुन्दर और उनके ग्रन्थ", अनेकान्त,** वर्ष ४, किरण ८, पृष्ठ ४७०-४७१।

K. Kunjunni Raja and N. Veezhinathan, Ed. *New Catalogues Catalogorum,* Volume XI, Madras, 1983 A.D., P. 151.

१०. A.P. Shah, Ed. *Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss.* Part II, No. 5974, pp.-376-77.

-द्वारा मनीष जनरल स्टोर्स
चौक, रामनगर, वाराणसी- २२१००८

अपनी कृतियों से भरा, भारती का भण्डार।
ऐसे सूरीन्द्र को करुँ, बारबार नमस्कार।।

जन्म–शती पर स्मरण–

डॉ. जगदीश चन्द्र जैन

२० जनवरी, १९०९ ई. को उत्तर प्रदेश में मुज़फ्फरनगर जिले के ग्राम बसेड़ा में जन्मे और २८ जुलाई, १९९४ ई. को मुम्बई में ८५ वर्ष की वय में दिवंगत हुए डॉ. जगदीश चन्द्र जैन संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में निबद्ध प्राचीन भारतीय कथा साहित्य को प्रकाश में लाने वाले विश्वविश्रुत अप्रतिम प्रतिभा के धनी विद्वान थे। बाल्यावस्था में ही पिता ला. कांजीमल का साया उनके सिर से उठ गया था अतः बाल्यकाल विपन्नता में ही व्यतीत हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के अनन्तर उन्होंने पहले कुछ समय मुरैना के जैन विद्यालय में अध्ययन किया तदनन्तर ७ जून, १९२३ ई. को काशी के स्याद्वाद विद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के साथ ही पं. कैलाशचन्द्र जी से **गोम्मटसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक**, जैसे गूढ़ ग्रन्थों के अध्ययन करने का सुयोग प्राप्त हुआ। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनंतर उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ अध्ययनरत रह उन्होंने संस्कृत में शास्त्री परीक्षा और दर्शन शास्त्र में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की तथा आयुर्वेद का भी अध्ययन किया। महात्मा गांधी की विचारधारा से प्रभावित हो पढ़ाई बीच में ही छोड़ सन् १९२९ ई. में उन्होंने उनके सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। सन् १९३२ ई. में बनारस छोड़ने के पश्चात वह एक वर्ष शान्ति निकेतन में शोध छात्र रहे।

जगदीश चन्द्र ने अपनी आजीविका का प्रारम्भ अजमेर रियासत में एक स्कूल में अध्यापन से किया, किन्तु प्रधान अध्यापक द्वारा उनके गांधी टोपी पहनने पर आपत्ति किये जाने पर स्वाभिमान की रक्षा करते हुए उन्होंने वहाँ से त्याग पत्र दे दिया। तदनन्तर ३० वर्ष उन्होंने मुम्बई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत राम नारायण रुइया कालेज में हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का अध्यापन किया और वहाँ प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष बने। मुम्बई विश्वविद्यालय से उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध Life in Ancient India as depicted in Jain Canons पर पी-एच.डी. की। यह शोध-प्रबन्ध सन् १९४४ ई. में प्रकाशित हुआ। सन् १९६५ ई. में **जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज** नाम से इसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित हुआ। इस बीच वर्ष १९५२-५३ में वह चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान एवं साहित्य

विभाग में हिन्दी के प्रोफेसर और वर्ष १९५८-५९ में प्राकृत जैन इन्स्टीट्यूट, मुज़फ्फरपुर (बिहार) में प्राकृत और जैन दर्शन के प्रोफेसर व शोध निर्देशक रहे। सन् १९६० ई. से हिन्दी में पी-एच. डी. करने वाले शोध छात्रों के निर्देशक रहे और उनके मार्गदर्शन में ८ छात्रों ने उपाधि अर्जित की। वर्ष १९६९-७० में 'सेवानिवृत्त अध्यापकों की सेवाओं का उपयोग' योजनान्तर्गत उन्हें 'यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स अवार्ड' प्राप्त हुआ। सन् १९७० ई. में पश्चिम जर्मनी की कील यूनीवर्सिटी ने उन्हें आमंत्रित किया और वहाँ उन्होंने चार वर्ष तक हिन्दी के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। उक्त अवधि में उन्होंने जर्मनी के अन्य विश्वविद्यालयों और संस्थानों के अतिरिक्त स्वीडन की स्टॉकहोम यूनीवर्सिटी और लन्दन विश्वविद्यालय में महत्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यान दिये तथा पेरिस में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद् कांग्रेस में अपने शोध-पत्र का वाचन किया। भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रचार-प्रसार हेतु उन्हें उपर्युक्त देशों के अतिरिक्त श्रीलंका, नेपाल, चेकोस्लोवाकिया, डेनमार्क, पोलैण्ड, रूस और ब्राजील आदि अनेक देशों का भ्रमण करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

डॉ. जगदीश चन्द जैन ने संस्कृत की **हितोपदेश** और **पंचतंत्र** की कहानियों और पालि की **जातक** कथाओं का हिन्दी में रूपान्तरण कर तथा प्राकृत साहित्य में निबद्ध कथाओं के आधार पर **दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, प्राचीन भारत की श्रेष्ठ कहानियां, रमणी के रूप** का हिन्दी में, और Treasury of Tales का इंगलिश में प्रणयन कर तथा संघदासगणि के प्राकृत ग्रन्थ **वसुदेव हिण्डी** का सुसम्पादन कर प्राचीन भारतीय कथा वाङ.मय को समृद्ध किया था।

उन्होंने संस्कृत से **स्याद्वाद मंजरी,** गुजराती से **श्रीमद् रामचन्द्र,** मराठी से **विवाह का बन्धन**, हिन्दी से इंगलिश में Mokshamala तथा चीनी से हिन्दी में **पथ का प्रभाव** का अनुवाद किया था। उन्हें **पाश्चात्य समीक्षा दर्शन** (विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित), **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** (दो भाग), **महावीर वर्धमान, भारतीय तत्वचिन्तन, सम्प्रदायवाद, विश्व साहित्य के ज्योतिपुंज, प्राकृत पुष्करिणी** प्रभृति कृतियों के प्रणयन का भी श्रेय है। सितम्बर १९७० ई. में उन्होंने एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद में **'जैन प्राकृत साहित्य का विकास'** विषय पर व्याख्यानमाला प्रस्तुत की थी।

उनकी कृति **'प्राकृत साहित्य का इतिहास'** को सन् १९६१ ई. में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत किया गया था और सन् १९६६ ई. में उन्हें **'सोवियत**

रूस पिता के पत्रों में' पर **'सोवियत लैण्ड नेहरू अवार्ड'** प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त रहा। २८ जनवरी, १९९८ ई.* को भारत सरकार के डाक विभाग ने उनकी स्मृति में दो रुपये मूल्य का डाक टिकट जारी किया था जिसमें बायीं ओर उनका चित्र तथा दायीं ओर सिन्धु घाटी से प्राप्त दो प्राचीन मुद्राओं के चित्र प्रदर्शित हैं।

बहुभाषाविद् अध्ययन-अध्यापन तथा विपुल साहित्य सृजन द्वारा प्राचीन भारतीय कथा साहित्य और संस्कृति को ही नहीं अपितु धर्म-दर्शन आदि विविध विषयों को सटीक प्रस्तुत करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विद्वान डॉ. जगदीश चन्द्र जैन की इस वर्ष २० जनवरी को जन्मशती है। इस पावन अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में हमारा सादर नमन् है।

- रमा कान्त जैन

प्राचीनता का परिचायक आदीश्वरगिरि

- श्रीमती सरोज सांधेलीय

प्राचीन वैभव और अपनी संस्कृति को अपने अंचल में समेटे हुए दमोह से आग्नेय दिशा में (दमोह-जबलपुर राजमार्ग पर) जैन अतिशय क्षेत्र आदीश्वरगिरि (नोहटा) जिला-दमोह (म.प्र.) १२वीं शताब्दी में चन्देल शासकों की राजधानी रही है। मध्यकालीन राजधानी का परिधान पहने वह आज भी अपनी पुरातन संस्कृति एवं संस्कारों को अन्तर्निहित किये हुए हैं। इनमें पुरा समाज की सभी संस्कृतियों की झलक आज भी देखी जा सकती है, जो विशेष प्रकार की संस्कृतियों और समाजों के समावेश में संरक्षित व गुम्फित अवशेषों से निकलकर सामने आई है। अतिशय क्षेत्र 'आदीश्वरगिरि' की प्राचीन मूर्तियाँ और कला-सम्पदा को तीर्थ क्षेत्र की कमेटी संरक्षित कर क्षेत्र का पुरावैभव वापस लौटाने की कोशिश में जुटी हुई है।

नोहटा नगर की निकटवर्ती व्यारमा और गौरैया नदी के संगम तट के समीप स्थित पहाड़ी पर बिखरी इस प्राचीन धरोहर को नई ऊर्जा तब मिली जब १९९२ ई. में मुनि मार्दवसागर महाराज का यहाँ पदार्पण हुआ। उनकी सतत प्रेरणा, शुभाशीष,

निर्देशन में और अनेक मांगलिक प्रवासों तथा क्षेत्र की प्रबन्ध कमेटी के प्रयासों से यह क्षेत्र अध्यात्म, कला और साधना के हरीतिमायुक्त स्थल के रूप में विकसित हुआ है। तीर्थ क्षेत्र परिसर में विद्यमान अनेक कलात्मक प्राचीन मूर्तियों के अतिरिक्त एक अष्ट जिनबिम्ब युक्त सर्वतोभद्र चैत्य स्तम्भ फलक भी स्थापित है, इस लाल पत्थर के स्तम्भ में चार पद्मासन व चार खड्गासन कायोत्सर्गासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) के पुरातत्वविद् डॉ. धीरेन्द्र सोलंकी ने अपने शोध में इस स्तम्भ को विश्व का एक मात्र सर्वतोभद्र स्तम्भ माना है। मंदिर में स्थापित अधिकांश मूर्तियाँ चंदेल राजाओं के समय की निर्मितियाँ ही हैं। ९-१०वीं सदी की भगवान आदिनाथ की पद्मासन (दे. चित्र) और खड्गासन मुद्रा की दो और भगवान महावीर की एक प्रतिमा है। डॉ. सोलंकी के द्वारा इन प्रतिमाओं का मनोहारी वर्णन किया गया है। साथ ही अनेक प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी तीर्थक्षेत्र के परिसर में स्थापित की गई हैं, जो इस तीर्थ की प्राचीनता की परिचायक हैं। भगवान आदिनाथ का भव्य शिखरबन्द मन्दिर भी यहाँ निर्मापित है। क्षेत्र पर एक उदासीन आश्रम भी संचालित है, जिसमें अनेक त्यागी व्रती आत्म साधना करते हैं। इसी में एक आध्यात्मिक पुस्तकालय भी संचालित है। इस क्षेत्र पर क्षमावाणी पर्व पर मेला लगता है।

नोहटा के दूसरे छोर पर नौहलेश्वर का प्रसिद्ध कलात्मक शिव मन्दिर कलचुरि शासकों के समय का निर्मित है। यहां प्रतिवर्ष मध्यप्रदेश शासन की ओर से अनेक सांस्कृतिक आयोजनों के साथ एक भव्य 'नोहटा महोत्सव' भी होता है तथा 'शिव रात्रि' पर मेला भी लगता है।

- २८, सरोज सदन, प्रोफेसर कालोनी, दमोह -४७०-६६१

हमारे मंदिर

मनोज्ञता बसी हुई है मंदिरों में हमारे
पाषाण जीवन्त हो उठे छैनियों के सहारे
साधना शिल्पियों की रंग लायी है यहाँ पर,
स्वर्ग की सुषमा उतर आयी है धरा पर।।१।।

तूलिका ने चित्र ऐसे हैं संवारे
भित्तियां मुखरित हो उठीं उनके सहारे
आराध्य का दिव्य स्वरूप प्रस्फुटित हो उठा है,
मन-मुग्ध दर्शक भाव-विभोर हो उठा है।।२।।

शूरसेन जनपद में जैन संस्कृति की विशेषताएँ

- डॉ. संगीता सिंह

बुद्धकालीन सोलह महाजनपदों में शूरसेन जनपद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा थी। भगवान कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण मथुरा को भारत की हृदयस्थली के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मथुरा की गणना सप्तमहापुरियों में की गई है।[१] मनु ने ब्रह्मर्षि देश के अन्तर्गत कुरु, पांचाल, मत्स्य और शूरसेन की स्थिति को स्वीकार किया है। शूरसेन जनपद के निवासियों का आचार-विचार समस्त पृथ्वी के नर-नारियों के लिए आदर्श था।[२] जैन धर्म की प्रचलित मान्यता के अनुसार नाभि के पुत्र भगवान ऋषभदेव की आज्ञा से इन्द्र ने बावन देशों की रचना की थी। उन देशों में शूरसेन और उसकी राजधानी मथुरा का भी उल्लेख है।[३]

भारत के पुरातात्विक और ऐतिहासिक सन्दर्भ में वैदिक और जैन संस्कृति का अस्तित्व प्राचीनकाल से ही स्वीकार किया जाता है। संस्कृति घटक है-सम+स+कृति का। 'सम' का अर्थ है सम्यक्, 'स' का अर्थ है शोभादायक तथा 'कृति' का अर्थ है प्रयत्न। संस्कृति जन का मस्तिष्क है और धर्म जन का हृदय।[४] जैन धर्म के विषय में उपलब्ध परम्परा और साक्ष्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जैन धर्म का प्रारम्भ किसी व्यक्ति विशेष या स्थान विशेष से नहीं हुआ है, अतः यह स्वाभाविक है कि जैन धर्म के विकास का सम्बन्ध उस काल विशेष से सम्बन्धित है, जबसे किसी पुरुषार्थी योगी ने आत्म-स्वभाव को जानने के लिए साधना की। राग-द्वेष से मुक्त आत्मविजय करने वाले व्यक्ति जिन कहलाये।[५] भगवान महावीर ने आत्म संयम द्वारा साधना के नियन्त्रण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना की। शूरसेन जनपद की संस्कृति को 'ब्रज संस्कृति' भी कहते हैं।

शूरसेन जनपद का सांस्कृतिक सम्पर्क ईरान, यूनान तथा मध्य एशिया के साथ बहुत घनिष्ठ रहा। यह क्षेत्र विभिन्न धर्म एवं संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक प्रमुख केन्द्र बना। जैन धर्म ने वर्ण-समाज के विभाजन को कभी महत्व नहीं दिया। इस जनपद के प्रमुख केन्द्र शौरिपुर को बाइसवें जिन भगवान नेमिनाथ का जन्म स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस जनपद में भगवान महावीर का समवसरण आया था।[६] इस

जनपद में चौरासी क्षेत्र सिद्धक्षेत्र हैं क्योंकि यहा जैन धर्म के अन्तिम केवलि जम्बू स्वामी ने तपस्या करके मोक्ष प्राप्त किया था।[७]

शूरसेन जनपद के सांस्कृतिक विकास में वहाँ के आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस नगर में स्वर्ण, रजत, धन-धान्य, आदि का क्रय-विक्रय होता था। यहाँ सार्थवाह आते थे।

जैन मूर्तिकला, स्थापत्य कला, लेखनकला, नृत्यकला आदि का भी विकास वहाँ दृष्टिगोचर होता है।

जैन धर्म के आगमों का प्रामाणिक पाठ निश्चित करने के लिए चौथी शताब्दी ई. में आचार्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में यहाँ एक धर्म-परिषद का आयोजन किया गया जो 'माथुरी-वाचना' के[८] नाम से जाना जाता है।

संस्कृति एक प्रवाहमान सरिता के समान है। श्रमण संस्कृति ने शताब्दियो से अपनी दीर्घ यात्रा में अनेक विभिन्न संस्कृतियों को प्रभावित किया, परन्तु सदैव गतिशील बनी रही।

संदर्भः-

१. **गरुण पुराणः** २, २८, ३

२. **मनुस्मृतिः** २-१७, १९, २०

३. जिनसेनाचार्यः **महापुराण** पर्व १६, श्लोक १५५

४. भानावत, नरेन्द्रः **जैन धर्म का सांस्कृतिक मूल्यांकन,** पृ. १५५

५. जैन, प्रेम सुमनः **जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत,** पृ. ३

६. **विवाग सूयं,** ६ः नागार्च, बिहारी लाल, **शूरसेन जनपद की जैन विरासत,** पृ. ६८, **ऋषभ सौरभ,** दिल्ली १९९८

७. नागार्च बिहारी लालः उपर्युक्त पृ. ६७

८. श्री निवासन, डी.एम.ः **मथुरा-दि कल्चरल हेरिटेज,** पृ. २१०

-म. नं.- ११, जय नगर कॉलोनी,
गिलट बाजार, शिवपुर,
वाराणसी-२२१००२ (उ.प्र.)

मंदिर महासंघ समाज का नेतृत्व कर सकता है

-श्री संदीप कान्त जैन

इन्दौर से प्रकाशित **'प्रभाकर पथ'** के २५ जनवरी, २००६ के अंक में दि. जैन महासमिति के पूर्व अध्यक्ष श्री प्रदीप कुमार सिंह कासलीवाल की दिगंबर जैन अखिल भारतीय मंदिर महासंघ की अवधारणा अच्छी लगी। यह विचार सर्वप्रथम इन्दौर के ही श्री रमेश चन्द्र कासलीवाल के **'वीर निकलंक'** पत्र के संपादकीय में लगभग सात - आठ वर्ष पूर्व पढ़ा था। इसमें कोई दो राय नहीं कि मंदिर को यूनिट मानकर समाज को जोड़कर बना एक महासंघ सच्चे अर्थों में समाज को नेतृत्व दे सकेगा। जिसके सर्वमान्य नेतृत्व में एक लोकतांत्रिक महापंचायत का रूप होगा। ऐसी महा संसद में समाज की समस्याओं, आवश्यकताओं पर विचार विमर्श के उपरान्त जो कार्य योजनाएं बनेंगी वे समाज की उन्नति के मार्ग को प्रशस्त कर सकेंगी।

इस मंदिर महासंघ का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यह सकल दिगंबर जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था होगी जिसमें किसी उपजाति/ पंथ विशेष का प्रभुत्व न होकर सभी जैन जातियों के लोगों को स्थान मिलेगा जिससे आपस में सौहार्द बढ़ेगा। मंदिरों के कर्ता-धर्ता चूँकि ज्यादातर समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं अतः मंदिर महासंघ के किसी भी आवाहन/निर्णय को समाज का समर्थन मिलेगा। दूसरा बड़ा लाभ यह होगा कि समाज को अच्छे समर्पित, कर्मठ कार्यकर्ता/ नेता प्राप्त हो सकेंगे क्योंकि मंदिर के ज्यादातर अध्यक्ष/मंत्री परखे हुए समर्पित कार्यकर्ता होते हैं। किसी भी समस्या के उत्पन्न होने पर केन्द्रीय पदाधिकारियों की आपात बैठक कर आगामी कार्यवाही त्वरित गति से शुरू की जा सकेगी। मंदिर जी के नोटिस बोर्ड पर मंदिर महासंघ द्वारा कोई भी सूचना/समाचार समाज में त्वरित गति से प्रसारित हो सकेगा और इस प्रकार संवादहीनता की वजह से समाज में अभी व्याप्त उदासीनता की स्थिति से छुटकारा मिल सकेगा।

परन्तु यह विचार सिर्फ विचार ही न रह जाए, कार्यरूप में जितनी जल्दी परिणत हो जाए उतना ही जैन समाज का लाभ है। यद्यपि ऊपर से देखने में यह कठिन अवश्य लगता है लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि श्री प्रदीप कुमार सिंह कासलीवाल जैसे अनुभवी, समझदार तथा समाज की चिंता रखने वाले व्यक्ति इस महायज्ञ में आगे बढ़कर समय की इस महती आवश्यकता को समझते हुए इस योजना को अंजाम तक पहुँचाने में पूर्णतः सक्षम हैं। कारण हैं:- समाज में उनकी पारिवारिक व स्वयं की

प्रतिष्ठा, समाज-सेवा एवं समर्पण का उनका स्वयं का लम्बा अनुभव, उनकी इस योजना के बारे में स्पष्ट दूरगामी सोच और सबसे बढ़कर इन्दौर जैसे जैन-बहुल शहर में उनकी अवस्थिति-जहाँ उन्हें पद्मश्री बाबूलाल पाटौदी जी जैसे वयोवृद्ध सुलझे हुए एवं सुयोग्य नेता के लम्बे अनुभव एवं सुस्पष्ट सोच से समृद्ध सहज सुलभ सलाह का लाभ तो प्राप्त होगा ही वहीं समाज सेवा को समर्पित कर्मठ व योग्य कार्यकताओं यथा श्री रमेश चन्द्र कासलीवाल, डॉ. अनुपम जैन, श्री अशोक बड़जात्या, श्री निर्मल पाटौदी, श्री कैलाश बेद, श्री हँसमुख गाँधी जैसे कंधा से कंधा मिलाने वाले विचार विमर्श के उपरान्त योजना के कार्यान्वयन के लिए तुरंत उपलब्ध होंगे। वास्तव में इन्दौर ही एकमात्र ऐसा शहर है जहाँ इस समय कर्मठ, योग्य, समाज सेवा को समर्पित कार्यकर्ताओं की एक अच्छी खासी संख्या है जिसे यदि एक अच्छा नेतृत्व मिल जाय तो यह टीम के रूप में किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक अंजाम तक पहुँचा सकता है यह हम पूर्व में भी देख चुके हैं।

मेरा तो श्रीमान प्रदीप सिंह कासलीवाल से अनुरोध है कि इस कार्य की महत्ता को समझते हुए तुरन्त बढ़कर आगे आएं और जल्द से जल्द एक प्रारंभिक 'केन्द्रीय संयोजक समिति' का गठन करके 'अखिल भारतीय मंदिर महासंघ' के कार्य को सफलतापूर्वक अंजाम तक पहुँचाएं और अपनी पारिवारिक ख्याति को द्विगुणित करें। **यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'मंदिर महासंघ' समाज में वर्तमान में चल रही संस्थाओं का प्रतिस्पर्धी न बने अपितु आवश्यकता पड़ने पर उनका सहयोगी एवं अनुपूरक बने। यह भी अभीष्ट है कि इस महासंघ का उद्देश्य, कार्यक्रम और कार्यक्षेत्र स्पष्ट रहे ताकि किसी को कोई भ्रान्ति न हो तथा यह कि यह महासंघ समग्र जैन समाज और भारतीय समाज में सद्भाव और सौहार्द का कारक बने।**

-ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

अपने प्रति दुर्व्यवहार नहीं रुचता किसी को भी जगत में।
बच्चा हो या बूढ़ा सभी को मीठा बोल भाता है।।
दूसरों के प्रति सद्व्यवहार की भावना रहे यदि प्रत्येक मन में।
फिर रहे न कहीं अशान्ति, संसार स्नेह-सिक्त हो जाता है।।

जरा सोचिए!

– श्री मेघराज जैन गर्ग

महात्मा गांधी के समय की बात है। कांग्रेस की एक मीटिंग में सत्याग्रह आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार होने वाला था किन्तु जिस रिपोर्ट या पुस्तिका के आधार पर प्रस्ताव लिखा जाना था, वह फाइलों के ढेर में खो गई थी। गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू से पूछा- "आपने रिपोर्ट पढ़ ली थी न, कुछ याद है?" राजेन्द्र बाबू ने कहा- "हां, मैंने रिपोर्ट पढ़ ली। मैं उसे लिखवा सकता हूँ।"

इधर रिपोर्ट की खोज होने लगी। उधर राजेन्द्र बाबू उसे लिखवाने लगे। जब वे लगभग डेढ़ सौ पृष्ठ लिखवा चुके तब रिपोर्ट की मूल प्रति मिली। दोनों रिपोर्टों को मिलाया गया। उनमें अक्षरशः समानता थी।

नेहरू जी ने व्यंग्य में राजेन्द्र बाबू से कहा-"राजेन्द्र बाबू! कमाल का दिमाग है आपका। यह आपको कहाँ मिला?" राजेन्द्र बाबू ने मुस्कराते हुये कहा- "यह अण्डे का नहीं, दूध का दिमाग है।"

बुद्धिबल और शरीर बल बढ़ाने के लिए जो लोग सामिष भोजन या अण्डे की वकालत करते हैं, उनके लिए यह एक बोध पाठ है। राजेन्द्र बाबू का सीधा-सपाट किन्तु मार्मिक उत्तर सुनकर नेहरूजी झेंप गए।

आज शक्ति, टॉनिक और विटामिन्स के नाम पर अभक्ष्य वस्तुओं का उपयोग बढ़ रहा है। जैन शासन में खाद्य-संयम पर विशेष बल दिया गया है। उसकी ओर थोड़ा सा भी ध्यान केन्द्रित करें तो अपने विवेक से आरोग्य संबंधी अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ एक जनसभा को सम्बोधित कर रहे थे। प्रसंगवश उन्होंने इस्लाम धर्म की मुक्त मन से प्रशंसा की। उनका भाषण पूरा हुआ। एक व्यक्ति उनके निकट पहुँचकर बोला- "शॉ! ऐसा लगता है कि आप अब शीघ्र ही इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले हैं।" बर्नार्ड शॉ ने पूछा-"क्यों भाई! तुझे यह बात किसने कही?" प्रश्नकर्त्ता बोला- "कहा किसी ने नहीं। आपने इस्लाम धर्म की इतनी विशेषताएं बताई तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ।" बर्नार्ड शॉ ने उस भाई की जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा- "तुम्हारा कथन ठीक है। इस्लाम धर्म बहुत अच्छा है। मैं इसे स्वीकार कर लेता, किन्तु मेरी भी एक कठिनाई है। धर्म अच्छा है, पर मुसलमान अच्छा नहीं है।"

धर्म और मजहब दो अलग तत्व हैं। धर्म सदा अच्छा ही होता है। बुराई मजहबों से आती है। हर धर्म के सिद्धान्त ऊँचे होते हैं, किन्तु आदमी उनका ईमानदारी से

पालन नहीं करता। जब तक धर्म आत्मसात नहीं हो पाता, आदमी अच्छा नहीं बन पाता। सब कुछ ठीक होने पर भी आदमी ठीक नहीं है तो कोई भी काम ठीक नहीं होता। इसलिए सबसे पहले आदमी को ठीक करने की जरूरत है, उसकी वृत्तियों को बदलने की जरूरत है।

उच्छृंखलता वृत्तियों की हो या व्यवहार की, उससे समस्याएं बढ़ती हैं। आज इन समस्याओं से पूरा विश्व आक्रान्त हैं। अधिक उत्पादन, अधिक अर्जन और अधिक भोग से आकांक्षाओं का सागर तरा नहीं जा सकता। विवेक एवं संयम ही वे क्षितिज हैं जहाँ से समाधान की दिशाएं खुल सकती हैं।

अपने वर्तमान जीवन को सुख-सम्पदा से परिपूर्ण देखने की अबूझ चाह मनुष्य को दुष्प्रवृत्ति की ओर ले जाती है। आत्मख्यापन की मनोवृत्ति भी एक ऐसा हेतु है जो करणीय और अकरणीय की भेद-रेखा को समाप्त कर देता है। पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान की कामना में उलझा हुआ व्यक्ति भी ऐसी प्रवृत्ति कर बैठता है, जो दूसरों के लिए पीड़क और घातक प्रमाणित होती है। उसकी इच्छा-तरंगें जिस दिशा में उच्छ्वसित होती हैं वहां स्वार्थ, भय और प्रलोभन की संज्ञा पुष्ट हो जाती है। सुविधावादी मनोवृत्ति में उलझने वाला अपने विवेक के चिराग को बुझाकर तिमिस्त्रा के अपरम्पार सागर में बह जाता है, जहां इच्छाओं और आकांक्षाओं के विस्तार से सुख पा लेने का उसका अक्षत विश्वास तार-तार हो जाता है। आत्म-विश्वास चुक जाने के बाद व्यक्ति का मंजिल की ओर बढ़ता हुआ कदम भी थम जाता है और वहां व्याप्त हो जाता बिखराव और टूटन से भरा बोझिल वातावरण।

कोई तत्व कितना ही अच्छा हो, वह तब तक अपेक्षित लाभ नहीं दे सकता, जब तक व्यवहार की भूमिका पर नहीं आ जाता। धर्म को जीवन के आचार और व्यवहार की भूमिका पर उतारना लोगों को बहुत कठिन लगता है। वे केवल भगवान की उपासना कर धार्मिक बनना चाहते हैं। पर धार्मिकता के अभाव में उपासना का कोई विशेष महत्व नहीं है।

उपासना व्यक्ति के लिए बुराई न करने की प्रेरणा बननी चाहिए। यदि कोई बुराई है तो उसे छोड़ने की प्रेरणा बननी चाहिए। व्युत्पति की दृष्टि से देखें तो उपासना का अर्थ होता है नजदीक रहना। अपनी आत्मा के पास रहना। पर यह तभी संभव है, जब व्यक्ति अपने आचार और विचार में आत्मगुणों को डाले। वस्तुतः धर्म क्या है? इन आत्मगुणों के विकास का नाम ही तो धर्म है।

- संपादक- **सहज आनन्द** (त्रैमासिक)
जैन ग्रंथागार, २३६, दरीबाकलां, चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन

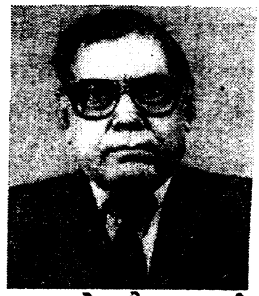

मध्य प्रदेश के दमोह जिले के कुतपुरा अपरनाम तेंदूखेड़ा ग्राम में १५ मार्च, १९२५ ई. को परवार जातीय पंचरत्न गोत्रीय दिगम्बर जैन परिवार में डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन का जन्म हुआ था। उनके पिताश्री सुखलाल मध्यम वर्गीय कृषक थे और माताजी हीराबाई धर्मनिष्ठ महिला थीं। पिता का साया जल्दी ही उनके सिर से उठ गया था। प्रारम्भिक शिक्षा कुतपुरा ग्राम और कटनी के जैन बोर्डिंग हाउस में रहकर प्राप्त करने के अनन्तर उन्होंने २६ जून, १९४१ ई. को वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश लिया था। वहाँ अध्ययनरत रहकर उन्होंने 'दर्शनाचार्य' और 'न्यायतीर्थ' परीक्षाएं उत्तीर्ण की तथा बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी में आयुर्वेद का अध्ययन कर ए.एम.एस. उपाधि अर्जित की। तदनन्तर सागर शहर में कुछ वर्षों तक चिकित्सक के रूप में प्रैक्टिस की। सन् १९५६ ई. में वह लखनऊ राजकीय आयुर्वेदिक कालेज में लेक्चरर होकर आये और यहीं बस गये तथा यहाँ अपना निजी आवास आर्यनगर में बना लिया।

राजकीय आयुर्वेदिक कालेज में कार्य करते वह स्नातकोत्तर शारीर विभाग के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष बने और प्रधानाचार्य एवं अधीक्षक के पदों पर पहुँच कर ३१ मार्च, १९८३ ई. को ससम्मान सेवानिवृत्त हुए। उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय के आयुर्वेद संकाय का डीन; भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, नई दिल्ली की शिक्षा परिषद और भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश का सदस्य तथा उत्तर प्रदेश आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बत अकादमी का मंत्री बनने का गौरव प्राप्त रहा। उन्होंने चिकित्सा से सम्बन्धित सौ से अधिक शोध-पत्र लिखे। एक कुशल चिकित्सक के रूप में उनकी ख्याति रही।

आयुर्वेद शिक्षा ग्रहण करने और तदनन्तर दीर्घ काल तक उसका अध्यापन करने के दौरान डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन ने यह अनुभव किया कि आयुर्वेद शिक्षा के लिये उपलब्ध ग्रन्थ पूर्ण नहीं हैं। छात्रों को आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का विशदीकरण आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के परिप्रेक्ष्य में सामंजस्य स्थापित कर क्रियात्मक एवं चिकित्सोपयोगी ज्ञान के साथ अध्यापन कराया जाय तो छात्र अधिक मुस्तैदी से एकाग्रचित होकर

सुनता है और अध्यापक की एक भी कक्षा नहीं छोड़ता। उपयोगी पाठ्य पुस्तकों की कमी को पूरा करने के लिये डॉ. जैन नें पाठकों और अध्येताओं को ध्यान में रखकर अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर हिन्दी में सरल भाषा-शैली में आवश्यक चित्रों के साथ ६ ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनमें Human Physiology के प्रायोगिक एवं क्रियात्मक अध्ययन के लिये प्रणीत **'प्रायोगिक क्रियाशारीर'** पुस्तक और **'शरीरक्रियाविज्ञान'** पुस्तक (दो खण्ड) तथा Humam Anatomy पर रचित **'शरीर-रचना विज्ञान'** (दो खण्ड) उल्लेखनीय हैं। इन विशालकाय ग्रन्थों के प्रणयन में उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. प्रमोद मालवीय (सम्प्रति राजकीय आयुवैदिक कालेज, लखनऊ, में मौलिक सिद्धान्त के विभागाध्यक्ष) सहयोगी रहे हैं। वर्षों से अनेक व्याधियों से ग्रस्त डॉ. जैन ने अथक परिश्रम से इन ग्रन्थों को पूर्ण किया और चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, से अन्तिम दो पुस्तकों के संस्करण क्रमशः २००० ई. और २००८ ई. में प्रकाशित हुए तथा भारत के आयुर्वेदिक कालेजों के पाठ्यक्रमों में इन्हें मान्यता प्राप्त हुई।

डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन ने अपने को चिकित्सा और चिकित्सकीय अध्यापन तक ही सीमित नहीं रखा। सन् १९६५ ई. में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम. ए. परीक्षा में प्रथम श्रेणी और प्रथम स्थान प्राप्त कर दो स्वर्ण पदक अर्जित किये। वह धर्मनिष्ठ सुश्रावक और जैन धर्म-दर्शन के अच्छे ज्ञाता विद्वान हैं। पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की प्रेरणा से उनके अस्वस्थ रहने पर और दिवंगत हो जाने के उपरान्त भाद्रपद मास के दशलक्षण पर्व के दौरान दिगम्बर जैन मन्दिर, चारबाग, लखनऊ में डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन ही वर्षों तक शास्त्र-प्रवचन करते रहे। अन्यत्र भी जैन धर्म-दर्शन पर व्याख्यान देने का उन्हें सुयोग रहा है।

सामाजिक गतिविधियों में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। सम्प्रति तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, की प्रबन्ध समिति के वह सदस्य हैं और भारतीय जैन मिलन क्षेत्र संख्या- १ के संरक्षक श्री जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा, लखनऊ और लखनऊ जैन मिलन के अध्यक्ष तथा भारतीय जैन मिलन के उपाध्यक्ष रहने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त रहा है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की कार्यकारिणी का सदस्य होने का सुयोग भी उन्हें रहा।

इधर विगत काफी समय से गंभीर व्याधियों से ग्रस्त होकर डॉक्टर साहब प्रायः पूर्णतः शैय्यारत ही हैं। आज १५-३-२००६ को उनके जन्म दिन पर उनके शीघ्र पूर्ण स्वास्थ्य लाभ की कामना के साथ इत्यलम्।

- रमा कान्त जैन

आध्यात्मिक गीत

घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।
संचय की लालसा बुरी है,
राग-द्वेष की यही धुरी है,
जग-जीवन पोषण पाता है, शोषण वे अपना करते हैं।
घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।।
छुटे न जब तक विषय वासना,
आखिर कैसे हो उपासना,
बाहर करें पाठ-पारायण, भीतर कलुष घना करते हैं।
घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।।
हिंसा सदा घृणा का घर है,
धधक रहा भीतर-बाहर है,
क्षुधा मिटाने हेतु स्वयं की, खग कुल नित्य हना करते हैं।
घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।।
खाली घर लौटे पनघट से,
घर-आँगन लगते चौपट से,
उजड़ रही जीवन की बगिया, अन्तर पाप सना करते हैं।
घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।।
विनाशीक लगते लक्षन हैं,
जो पालें सभी कुलक्षन हैं,
संतों का सत्संग न चाहा, वंदन हेतु मना करते हैं।
घर से बेघर होने पर ही, साधक सिद्ध बना करते हैं।।

-विद्यावारिधि डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डी० लिट्
-मंगल कलश, सर्वोदय नगर, अलीगढ़

'हम हिंदी, बोलें हिन्दी', 'दशलक्षण पर्व' और 'गिलास आधा भरा है' कृतियों पर एक समालोचनात्मक दृष्टि

- श्री मदन मोहन वर्मा

हम हिंदी, बोलें हिन्दी

पेशे से इंजीनियर परन्तु साहित्यिक रुचि और हिन्दी से प्रेम होने के कारण कवि राजीव कान्त जैन द्वारा प्रसूत यह काव्य कृति 'देश की ओर', 'प्रेम की डोर' और 'भीतर होती भोर' इन तीन खण्डों में विभाजित है। जहाँ 'देश की ओर' में देश-प्रेम और 'प्रेम की डोर' में श्रृंगार रस प्रवाहित हुआ है वहीं 'भीतर होती भोर' में 'मैं कौन' का जवाब ढूंढ़ने की कवि की कोशिश है।

कवि ने कृति के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है- देश, समाज और व्यक्ति के आसपास नित्य नयी हलचल का मन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है और उसका प्रभाव यह कविता संग्रह है।

मेरा मानना है कि प्राणी साधारण रूप से अपनी बात गद्य में कहता है, परन्तु किसी वस्तु को देखकर प्रफुल्लित होने पर अथवा मन को भा जाने पर गुनगुनाने की प्रवृत्ति होने से वह सहज प्रवृत्ति के वशीभूत होने से कविता-पद्य में अपनी बात कह देता है। और यह भी कि कविता दुःखी मन को सान्त्वना देने और सुखी करने का विलक्षण उद्‌गार है जिसकी समता किसी से नहीं की जा सकती। यह साहित्यकार की मन की तंरगों का उच्छल वेग होता है, जो अनायास ही प्रस्फुटित होता है। यह जितनी ईमानदारी से जिन्दगी की सच्चाई सामने रखेगा-जन जीवन से जुड़ी होगी वह कविता जो ऐसा प्रभाव छोड़ेगी कि आदमी झूम उठेगा, कुछ देर को उसमें खो जाएगा। कुछ ऐसी ही झलक 'हम हिंदी बोलें हिन्दी' काव्य संग्रह से सामने आती है। देखी-भाली, समझी -बूझी स्थिति ने मन पर प्रभाव छोड़ा और कवि के द्वारा कविताएं फूट पड़ी जो स्वाभाविक है।

काव्य संग्रह की कुछ अच्छी कविताएं है- हम हिंदी, बोलें हिन्दी (जिस पर संग्रह का नामकरण हुआ है,) बहुत चले अभी पर बहुत जाना है, जीवन संगी, आओ न देवर, होली में, मैं देह के मकान में, मेरी कविता, दीप जला दो।

यह कहना सच होगा कि सरल, सहज, साधारण भाषा में बिना किसी लाग लपेट के विभिन्न दृष्टिकोणों से देखी गयी निजी व बाहरी दुनिया की वास्तविकता का कुशल

चित्रण जो मन-मस्तिष्क में कुछ देर को हलचल पैदा कर देता है- उसका प्रतिफल है ये कविता संग्रह। थोड़ी देर को सुकून मिल जाता है।

दशलक्षण पर्व -

यह विद्वान, अनुभवी लेखक व धर्मानुरागी श्री रमा कान्त जैन का एक अत्यन्त छोटा सा ग्रंथ है जिसमें जैन मतावलम्बियों के पर्व 'दशलक्षण' का विवरण बड़ी दूरदर्शिता और कुशलता से सामने रखा गया है। इसमें क्रमशः क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य दस धर्मों पर १० दिन का पर्व होने से एक-एक दिन एक बात पर ध्यान दिया जाता है। सच पूछिए तो यह आत्मोन्नति का पर्व है। श्रावका-श्राविका मंदिर में दर्शन-पूजन तो करते ही हैं, पर तन, मन को पवित्र करने के लिए उपवास रखते हैं। इन सबके बारे में इस लघु पुस्तिका में अच्छा वर्णन किया गया है।

पुस्तिका में बताये गए दशलक्षण की वास्तविकता पर ध्यान देकर, जीवन को पवित्र बनाकर आत्मिक आनन्द पाने का मार्ग अवश्य अपनाना चाहिए। इस दृष्टि से पुस्तक संग्रहणीय है। प्रयत्न, साहस और आत्मविश्वास रखकर हमें सत् पथ पर चलने का पुस्तिका मार्ग सुझाती है।

गिलास आधा भरा है -

यह भी श्री रमा कान्त जैन विद्वान, अनुभवी साहित्यकार की रचना है। उनमें अपनी बात कहने का ढंग बड़ी अच्छी तरह आता है जो व्यक्ति पर प्रभाव छोड़ता है। यह पुस्तिका गद्य रूप में होकर निबंध संग्रह है। सच पूछा जाये तो उनके पिता डॉ. ज्योति प्रसाद जैन अच्छे साहित्यकार, धर्म के ज्ञाता, शोधकर्ता आदि सभी गुण के माहिर थे और उनका प्रभाव संतान पर पड़ना स्वाभाविक है। इनके बड़े भाई डॉ. शशि कान्त भी **शोधादर्श** पत्रिका के सलाहकार हैं। पारिवारिक गुणों का संचार रमाकान्त जी में हुआ है और उसी का प्रभाव है यह निबंध पुस्तक। रमाकान्त जी का अध्ययन भी बढ़ा चढ़ा है और दुनिया के अनुभवों को तथा मानवीय प्रवृत्ति पर ध्यान देते हुए तथा देश व समाज आदि की वास्तविकता को समझते हुए ये निबंध सामने आये हैं।

निबंध लिखना कोई हँसी खेल नहीं । जिसका ज्ञान बढ़ा चढ़ा हो, जिसने गहन अध्ययन किया हो, जिसमें सूक्ष्म दृष्टि हो, जो प्रत्येक बात को ठीक ढंग से निहार सकता हो, जिसमें विचारों, स्थितियों, परिस्थितियों को ठीक तरह समझने का ज्ञान हो,

सोच विचारने की शक्ति बढ़ी चढ़ी हो, विवेक की मात्रा हो वही व्यक्ति निबंध की रचना कर सकता है। इस दृष्टि से यह निबंध संग्रह श्री रमाकान्त जी के सूझबूझ आदि सभी गुणों का परिचायक है। यह न भूलना चाहिए कि निबंधकार में सूक्ष्म दृष्टि से निहारकर ईमानदारी से छोटी सी छोटी घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने की सामर्थ्य होना चाहिए और ये गुण निबंधों को पढ़ने पर श्री रमाकान्त में दिखता है।

श्री रमाकान्त ने 'अपनी बात' में स्पष्ट किया है कि निबंध अर्थात् जिसमें कोई बंधन न हो, एक प्रकार की स्वतन्त्र रचना है । पुस्तक के १६ निबंध सन १९६३ से १९९६ तक की अवधि के होकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अनेक महान साहित्यकारों (स्व.) पं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, (स्व.) डॉ. विश्वनाथ याज्ञिक, पं. गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी आदि की दृष्टि में आकर सराहनीय रहे हैं, बात गौर करने योग्य है। ११ जून, १९९९ ई. को ज्ञानदीप प्रकाशन लखनऊ से प्रकाशित यह कृति वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार श्री ज्ञानचन्द जैन के उत्साहवर्धक आमुख तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी की विद्वतापूर्ण प्रस्तावना से मण्डित है। ये सब बातें निबंध की सभी स्थिति सामने रखती हैं और अधिक कहने को शेष ही क्या रहता है।

निबंधकार की अम्बे से की गई प्रारंभिक विनती कि 'इतना उपकार करदे -जगत ज्योतिर्मय कर सकूँ, लेखनी में धार धर दे', प्राचीन धार्मिक परंपरा का ही निखरा रूप है। इसी प्रकार साधक की दृष्टि से आंतरिक भावों को प्रगट किये गए विचार 'वीतराग के द्वार पर' में भी ध्यान देने योग्य है। 'भावना' की पंक्तियां भी समदृष्टि बताने वाली प्रेरणास्पद पंक्तियां हैं।

पुस्तक के सभी १६ निबंध छोटे होकर प्रभाव पूर्ण शैली में हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि निबंधों के साथ काव्य का सामंजस्य भी सुंदर रूप में सामने आया है। पुस्तक के कुछ अच्छे निबंध है-गिलास आधा भरा है (इस पर ही पुस्तक का शीर्षक है), सच्चा इन्सान, सुख का उपाय, अपरिग्रह व्यवहार में, अनेकान्तवाद व्यावहारिक जीवन में, मुक्ति का मार्ग, अति-तत्काल और चन्द्र चर्चा। आशावाद मिश्रित यथार्थवाद के दर्शन तो इनमें मिलते ही हैं, जीवन में सच्ची मानवता के गुण उत्पन्न होकर प्रेरणास्पद भी हैं। दूसरों के दुःख सुख की वास्तविकता सामने रखकर विवेक दृष्टि अपनाते हुए गंभीरता से सोचने विचारने को बाध्य करते हैं। शैली लेखन भी प्रवाहपूर्ण है। साथ ही भावों के अनुसार शब्दों के चयन भी सुन्दर हैं, अनुभवों को दर्शाते हुए सही मार्ग

प्रदर्शन करते हैं। निबंधों की विशेषता है कि हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के ज्ञान सहित सच्चे, पथ प्रदर्शक बन पड़े हैं।

अपने शब्दों में कहना चाहूँगा-

अज्ञान मिटाना ही मानवता है, सद्ज्ञान बढ़ाना ही मानवता है,

तू सौ की एक बात समझ ले प्यारे, मानवता की राह बताना भी

सच्चा इन्सान बनाना है प्यारे।

इस दृष्टि से पुस्तक सुन्दर होकर संग्रहणीय है।

सच कहूँ तो इस प्रकार की अच्छी पुस्तकें हमारी सांस्कृतिक व साहित्यिक विरासत की सहयोगी होकर हमारे जीवन के अंग हैं जो सच्चे पथ प्रदर्शक का काम कर जीवन को सार्थक व सफल करने के लिए उपयोगी हैं। लेखकगण बधाई के पात्र हैं। ईश्वर से उनकी दीर्घायु की कामना के साथ साथ सद्बुद्धि देने की भी प्रार्थना है ताकि साहित्य भंडार को भरने में वे पूर्ण रूप से सहयोग दे सकें।

- बी. १६, राजेन्द्रप्रसाद कॉलोनी, ग्वालियर

'गिलास आधा भरा है' और 'दशलक्षण पर्व' पर अभिमत

-श्री ओंकारश्री

गिलास आधा नहीं पूरा भरा है !

किसी भी कृति को स्वाध्याय में लेकर जब हम जीवन और जगत में उसे प्रसंगित पाते हैं तो हृदय बोल उठता है कि कृतिकार अपना व्यवहार प्रसंगी बन गया है।

'गिलास आधा भरा है', भाई रमाकान्त जैन की सन् १६६६ में छपी पोथी पढ़ी तो यह भावना जगी कि पोरनो प्रकाशनों और विलासिता का बखेड़ा करने वाली इलेक्ट्रानिक मीडिया के भदेस ने भारत के सत्साहित्य को गंभीर चुनौती दे दी है। इसका सामना सृजन की प्रशांत-क्रान्ति से ही संभव है। इस परिप्रेक्ष्य में यह कहने का मन करता है कि ऐसी पुस्तकें होनहार बालकों के पाठ्यक्रम का अंग बनें। संदर्भित कृति का निबन्ध 'सच्चा इन्सान' का चर्चित पात्र दीवान दयाराम, मन-मस्तिष्क को झकझोर देता है कि नेकी कर कुए में डाल सह लो समाज के थपेड़े, मत करो ढोंग सुधार का, समाज को बदलो अपने आचरण से। बूढ़े दीवान ने यश पाया, विद्या-धन पाया पर समाज-सत्य की रक्षा के लिए एक अनाथ कन्या को आत्मघात से

बचाया, विवाह रचाया। पति का नहीं पिता का धर्म निभाया। मरते दम तक उसने 'सत्यमेव जयते' के अन्तर्नाद से अपने प्राणों को प्रोज्वल किया।

कृति, प्रशंसा या निंदा की वस्तु नहीं होती, पढ़ा है जो, उसको अपरिग्रह भाव से आगे से आगे मन-वचन-कर्म से बांटते चलो ज्ञान को।

महिमा तो सुमेर की। मनको की मंजिल। महत्व मनकों का भी है पर कृति संदर्भ जब चल रहा है **'तो गिलास आधा भरा है' - यह शीर्षक 'सच्चा इन्सान' जैसे कृति-प्रतीक निबन्ध रूप में एक शीर्षस्थ सोच देता है। मुझ जैसे कृति सेवी-सर्जकों की वाणी को बल देता है और बोलती है वाणी मुझमें श्रद्धेय दयाराम की आत्मा की कि 'गिलास पूरा है।' निबन्ध की कला का यह शोधादर्श।** बधाई - रमाकान्त भाई!

लक्षणवान हो सो धारे दशलक्षण धर्म -

श्रमण व ब्राह्मण संस्कृतियों के आर्ष ग्रन्थों में धर्म के दशलक्षण, मात्र वर्णित ही नहीं हैं, वैज्ञानिक रूप से अब तो सार्वभौम रूप से मान्य हैं कि ये 'टेन कमांडेंट' भारत की विश्व को देन हैं।

धर्म धारे वो जो हो लक्षणवान। लक्षणवान बनता है आदमी अपने आत्म बोध से। ग्रंथ तो ज्ञायक है, कारक नहीं। दिशा मिली है तो चलना आपको ही है। जैन संस्कृति के 'दशलक्षण' पर्व की पर्युषण महिमा लोकमान्य है। पर अब प्रदूषण बढ़ा रहा है कर्मकान्ड, आडम्बर, अपव्ययकारी द्रव्य हिंसा जन्य समारोही पताका। प्रदूषण है चतुर्विध संघ में सर्व व्यापक। श्री रमाकान्त जैन ने खूब खुलकर, खरी बात खोलकर 'दशलक्षण पर्व' पोथी रची। **ऐसी धर्म-धारक प्रेरक कृति पढ़कर पटक देने की नहीं। लोक धर्म की रक्षिका के रूप में हर घर में सम्मान्य हो।** सर्वमंगल सर्वदा!

-२३१, नाहटा चेम्बर्स
मस्जिद मोठ, नई दिल्ली (द.)

जितना हो सके कर लो परोपकार जग में।
है न कोई बाधा, न कोई विराम इसमें।।
प्रतिफल की भावना बिना गर आये किसी के काम।
बिन चाहे स्वतः लोग लेंगे जग में तुम्हारा नाम।।

- 'सच्चा इन्सान' से

साहित्य-सत्कार

(१) दर्शन मोक्षसाधनमू: लेखक श्री पार्श्वकुमार सा. गुंडवाडेः प्र. मुक्तिश्री प्रकाशन, बेलगांव/भरतेश ग्रंथ भांडार बाहुली (जि. कोल्हापुर)-४१६११०; १९९७; पृ. १८० +२०; मूल्य रू० १००/-

श्री पार्श्वनाथ सा. गुंडवाडे सेवानिवृत्त जिला जज हैं। उनका जन्म १४ नवम्बर, १९३२ को एक सामान्य शेतकारी कुटुम्ब में जिला बेलगांव के तालुका अथणी के ग्राम मोलवाड में हुआ था। उनकी माध्यमिक शिक्षा श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम, बाहुबलि **(कोल्हापुर)** में हुई और वहीं परिवार से प्राप्त धार्मिक संस्कार सुदृढ़ हुये। बाहुबलि से प्रकाशित **सन्मति** मासिक पत्रिका में जैन धर्म और जैन दर्शन से सम्बन्धित उनके लेख मराठी भाषा में प्रायः प्रकाशित होते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक मराठी भाषा में निबद्ध है। इसमें मोक्षमार्ग के साधन के रूप में सम्यक्दर्शन की विवेचना की गई है। तप और ध्यान, प्रारब्ध व पुरुषार्थ, अनुकंपा, बारा अनुप्रेक्षा, व्यवहारनय और निश्चयनय, तथा प्रशान्तरूप दिगम्बर की विवेचना उनके आध्यात्मिक मर्म को सुबोध करने की दृष्टि से की गई है। पारिभाषिक शब्दों के अर्थ और सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची भी अंत में परिशिष्ट रूप में दी गई है।

मराठी भाषा से परिचित जैन दर्शन के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक लाभकारी है। श्री माणिकचंद भीसीकर की प्रस्तावना लेखक द्वारा प्रतिपादित विषय के महत्व को रेखांकित करती है।

(२) डॉ. ए.एन. उपाध्येः जीवन-साहित्य सौरभ : संपादक-श्री आर. एन. बेडकिहाले : प्र. दक्षिण भारत जैन सभेची पदवीधर संघटना, ३७, महावीर नगर, सांगली-४१६४१६; १४ सितम्बर, २००८, पृ० २४४ (सचित्र) ; मूल्य रू० २००/-

डॉ. आदिनाथ नेमीनाथ उपाध्ये के जन्म शताब्दी-शतमानोत्सव **(२००५-२००७ ई.)** के सन्दर्भ में इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है। ग्रन्थ मराठी भाषा में है। इसमें चार खण्ड हैं। खण्ड 'अ' में आत्मनिवेदन, चरित्र, जीवनसाधना, मानसन्मान, व स्मृति शुभसंदेश संकलित हैं, जो डॉ. उपाध्ये के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालते हैं। खण्ड 'ब' में डॉ. उपाध्ये के सात मौलिक भाषण और लेख हैं। खण्ड 'क' में डॉ. उपाध्ये द्वारा लिखित उपोद्घात, प्रस्तावना, संपादकीय व प्रधान संपादकीय ११ लेखों

का संकलन है। खण्ड 'ड' में डॉ. उपाध्ये के प्रति श्रद्धांजलि तथा जन्म शताब्दी गौरवांजलि से सम्बन्धित ८ लेख हैं।

शोधादर्श ६३ (नवम्बर २००७) में डॉ. उपाध्ये के ८ अक्टूबर **२००७** को **३२वी** पुण्यतिथि पर स्मृति स्वरूप श्री रमा कान्त जैन द्वारा जो गौरवांजलि प्रकाशित की गई थी उसका भी मराठी रूपांतर इस ग्रन्थ में समाहित है। हिन्दी पाठकों के लिए **शोधादर्श** में प्रकाशित उक्त लेख विशेष उपयोगी है।

डॉ. उपाध्ये के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व को जानने के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ विशेष रूप से उपयोगी है।

-डॉ. शशि कान्त

(३) सुकुमालसामिचरिउ : रच० पं० कवि विबुध श्रीधर; सम्पा०-अनु० प्रो० (डॉ०) प्रेम सुमन जैन; प्र० अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी- ३२२२२०; प्र०सं० २००५; पृ० २०८; मूल्य रु० २५०/-

मुनि सुकुमाल स्वामी की जीवनगाथा जैन परम्परा में काफी लोकप्रिय रही है। तन-मन से अत्यन्त सुकुमार वह अवन्तीनगरी के श्रेष्ठी सुभद्र और उनकी पत्नी जयश्री के पुत्र थे। सम्पन्न परिवार में सब प्रकार के गार्हस्थिक सुखों का उपभोग करने वाले सुकुमाल ने पूर्व भव के संयोग से मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। तपश्चरण में लीन इन मुनि को पूर्व भव की वैरी भाभी के श्रृगालिनी के रूप में जीव ने बहुत सताया। उनके मांस को नोच खाया, किन्तु तपस्या और ध्यान में लीन मुनि ने उफ तक नहीं की। सारे उपसर्ग और परीषह को समताभाव से सहकर उन्होंने प्राण तज दिये और मुक्त हो गये। कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म और तपस्या के दौरान परीषह-जय को रेखांकित करने वाली सुकुमाल मुनि की कथा का प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और कन्नड भाषा के प्राचीन साहित्य में उल्लेख तो हुआ है, किन्तु उनके जीवन चरित पर सर्वप्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना का श्रेय कवि विबुध श्रीधर को है।

कवि विबुध श्रीधर गोल्ह और वील्हा के पुत्र थे तथा हरियाणा के निवासी, अग्रवाल जैन थे। उन्होंने विक्रम संवत् १२०८ (११५१ ई०) की मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया, सोमवार के दिन, बलडइ ग्राम में राजा गोविन्दचन्द्र के काल में पुरवाड वंशीय जग्गू साहू के पौत्र एवं साहू पीथे के पुत्र कुमार साहू के अनुरोध पर **'सुकुमालसामिचरिउ'**

की रचना पूर्ण की थी। यह चरित ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में छह सन्धियों में १२४ कड़वकों में निबद्ध है और रचनाकार के अनुसार इसका ग्रन्थ प्रमाण १२०० पद्धडिया छन्द हैं।

इस चरित ग्रन्थ की आमेर, जयपुर और दौसा के जैन शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का परीक्षण कर अपभ्रंश के विशिष्ट विद्वान डॉ० प्रेम सुमन जैन ने इसका सुसम्पादन किया, हिन्दी पाठकों के लाभार्थ इसका भाषान्तरण किया तथा इसे अपनी विशद विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना से सज्जित किया जिसमें कथा के स्रोत, तत्सम्बन्धी पूर्ववर्ती-परवर्ती साहित्य, रचनाकार की अन्य कृतियों का परिचय तथा प्रस्तुत कृति का सर्वांगीण विवेचन किया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्टि में तुलनात्मक परिचय हेतु भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत **सुकुमालचरित** और श्री चन्द्र कृत प्राकृत **कहाकोसु** (कथाकोश) में अवन्ति सुकुमाल संधि का विषयानुक्रम, कन्नड **वड्डाराधने** में निहित सुकुमाल कथा का सारांश तथा प्रस्तुत कृति की तीनों हस्तलिखित प्रतिलिपियों के चित्र देकर ग्रन्थ के महत्व में अभिवृद्धि की गई है। इस दुर्लभ ग्रन्थ को इस भव्य रूप में जैन कथा साहित्य के अध्येताओं को उपलब्ध कराने हेतु सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

(४) धनंजय नाममाला : प्रणेता कवि धनंजय; हिन्दी अनुवाद मुनि जयानन्द विजय; संकलन एवं सम्पादन आचार्य अशोक सहजानन्द; प्र० रिसर्च बुक्स, बी-५/२६३, यमुना विहार, दिल्ली-११००५३; प्र० सं० २००८; पृ. ८८; मूल्य रु० १५०/-

आठवीं शती ईस्वी में हुए वसुदेव और श्री देवी के पुत्र कवि धनंजय, जिन्होंने अपने पुत्र का सर्प-विष उतारने हेतु 'मंदाक्रान्ता छन्द' में निबद्ध चालीस श्लोकों में भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुये सुप्रसिद्ध **'विषापहार स्तोत्र'** की रचना की थी और जिन्हें अनुपम **'द्विसन्धान काव्य'** (द्वयार्थक काव्य) की रचना करने का श्रेय है, ने शब्दकोशों का भी प्रणयन किया था। उन्होंने २०० अनुष्टुप् श्लोकों (अन्त्य प्रशस्ति सहित २०५ श्लोक) में **'धनंजय नाममाला'** तथा ४६ अनुष्टुप् श्लोकों में **'अनेकार्थ नाममाला'** निबद्ध की थी। इन नाममालाओं में उन्होंने एक-एक शब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों को एक साथ गुम्फित करके शब्द और अर्थ के भण्डार को भरा है। साथ ही एक शब्द के आगे-पीछे दूसरा शब्द जोड़ने से कैसे नया शब्द बनता है, उसकी प्रक्रिया भी बताई है।

प्रस्तुत संस्करण में दोनों नाममालाओं को मूल रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ पाठकों की सुविधार्थ उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। साथ ही परिभाषाएं, एकाक्षर कोश, शब्द बनाने की रीति, अंक संज्ञा, दिशा-विदिशा एवं उनके अधिपति विषयक अतिरिक्त सामग्री संजोकर ज्ञान-भण्डार में अभिवृद्धि की गई है। पहले से ही विद्वज्जगत में ख्यातिप्राप्त इन नाममालाओं का प्रस्तुत संस्करण निस्सन्देह संस्कृत और हिन्दी भाषा का अध्ययन करने वालों के लिये गागर में सागर है।

(५) संयम-साधक-साधु : ले० डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल; प्र० समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान, १२६, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड, जयपुर-३०२०१८; प्र० सं० २००८; पृ० १४४; मूल्य रु० १५/-

धार्मिक संस्कारों में पले और बचपन से ही मुनिराजों के सम्पर्क में आये प्रौढ़ विद्वान लेखक डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल मुनिचर्या से पूर्णतः परिचित रहे। किन्तु नवम्बर १९९९ ई० में अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद के दिल्ली में आयोजित हीरक जयन्ती अधिवेशन में जब साहू रमेश चन्द्र ने उन्हें श्रमणाचार को कलंकित करने वाले समाचारों की फाइल पकड़ाई तो देख-पढ़ वह विस्मय में डूब गये। साहूजी ने उन दुखद घटनाओं को रोकने का उपाय करने को उनसे कहा। तब उन्होंने **मूलाचार, भगवती आराधना, रयणसार, संयम प्रकाश, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, चारित्रसागर** आदि आगम ग्रन्थों का अध्ययन और आचार्य भगवंतों/मुनिराजों से चर्चा करके समाज को साधुचर्या की मर्यादा, संयम-साधना से परिचित कराने हेतु कई लेख लिख्कर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये। उन लेखों से प्रभावित कतिपय प्रबुद्ध पाठकों का आग्रह उन्हें पुस्तकाकार कराने का रहा। अस्तु १६ आलेखों का यह संकलन प्रकाश में आया। इन आलेखों में से 'साधुचर्या के मंगलमय छह काल' लेख **शोधादर्श-६१** में पृष्ठ ३४-३५ पर भी प्रकाशित हुआ है। धर्म का स्वरूप, साधु-आर्यिका और श्रावक की आगमोक्त चर्या और उसमें संयम की आवश्यकता और महत्ता को प्रतिपादित करने वाली इस कृति का प्रणयन करने हेतु विज्ञ डॉ० बंसल साधुवाद के पात्र हैं। किन्तु इसकी सार्थकता तभी है जब श्रमण संस्था में शिथिलाचार की प्रवृत्ति घटे और उसे कलंकित करने वाली दुखद घटनाओं की पुनरावृत्ति पर विराम लगे।

(६) जैन दर्शन में कारण-कार्य व्यवस्था : एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण : ले० डॉ० श्वेता जैन; प्र० पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई०टी०आई० रोड, करौंदी,

वाराणसी-२२१००५ एवं प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर; प्र० सं० २००८; पृ. ६५६+४०; मूल्य रु० ६००/-

सात अध्यायों में प्रणीत इस विपुलकाय ग्रन्थ में विदुषी लेखिका ने जैन एवं जैनेतर दार्शनिक ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर जैन दर्शन के अनुसार क्रमशः कारण-कार्य व्यवस्था, कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, कर्मवाद, पुरुषवाद और पुरुषार्थ का विवेचन करने के उपरान्त नय दृष्टि से काल; स्वभाव आदि एकान्त कारणवादों की समीक्षा करते हुए उनमें समन्वय स्थापित किया है। गहन अध्ययन के पश्चात समन्वयात्मक दृष्टि से प्रसूत यह गूढ़ दार्शनिक ग्रन्थ सहायक ग्रन्थ सूची और डॉ० धर्मचन्द जैन (जोधपुर) की २८ पृष्ठीय विशद विद्वत्तापूर्ण भूमिका से सज्जित है। दर्शन शास्त्र के अध्येताओं के लिये उपयोगी इस श्रमसाध्य कृति के प्रणयन हेतु लेखिका और इसे प्रकाश में लाने हेतु प्रकाशक द्वय साधुवाद के पात्र हैं।

(७) जीवन का उत्कर्ष : जैन दर्शन की बारह भावनाएं : ले० श्री चित्रभानु; अनु० डॉ० प्रतिभा जैन; प्र० पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई० टी० आई० रोड, करौंदी, वाराणसी - २२१००५, दिव्य जीवन सोसायटी, मुम्बई एवं करुणा अन्तर्राष्ट्रीय, चेन्नै; प्र० सं० २००८; पृ० १५६ + १३ ; मूल्य रु० २००/-

जैन धर्म में बारह भावनाओं का बड़ा महत्व रहा है। उनके चिन्तवन को भवनाशिनी अर्थात् संसार-सागर से तिरने का उपक्रम बताया गया है। ये १२ भावनाएं हैं- अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, अज्ञान, ज्ञान और धर्म। आगरा निवासी खण्डेलवाल जैन कवि भूधरदास (१६६३-१७४६ ई०) द्वारा प्रणीत **'बारह भावना'** जैन जगत में विख्यात है। इसका पाठ और चिन्तवन श्रावक बहुधा करते हैं। उक्त रचना का 'Twelve Modes of Reflection' नाम से इंगलिश रूपान्तर डॉ० शशि कान्त ने किया था जो **'शोधादर्श-५६'** (जुलाई २००६ ई०) में पृष्ठ १४-१५ पर प्रकाशित है।

जैन अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र, न्यूयॉर्क, के संस्थापक वयोवृद्ध चिन्तक विद्वान श्री चित्रभानु जैन ने इन भावनाओं अपरनाम अनुप्रेक्षाओं के आधार पर प्राणी मात्र के प्रति प्रेम की भावना का प्रचार करने के उद्देश्य से २ मार्च से १८ मार्च, १९७७ ई० तक अपने ध्यान केन्द्र में साधकों को सम्बोधित करने के लिये जो बारह व्याख्यान दिये थे उन्हें संकलित कर 'Twelve Facets of Reality : The Jain Path of Freedom'

नाम से १९८० ई० में प्रकाशित किया गया था। उसी कृति का यह हिन्दी भाषान्तरण डॉ० प्रतिभा जैन द्वारा प्रस्तुत है। भावनाओं का पुस्तक में किया गया विवेचन मात्र जैन श्रावकों को ही नहीं अपितु सभी पाठकों को आत्म-कल्याण की दिशा में अग्रसर करने वाला सिद्ध होगा। कृति के प्रणेता, अनुवादक और प्रकाशक सभी बधाई के पात्र हैं।

(८) तीर्थक्षेत्र पर्वादि वंदनाष्टक शतक (पूर्वार्द्ध) : कृतिकार पं० पवन कुमार जैन 'दीवान'; प्र० अ० भा० दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद्, ४४, गांधीनगर, अजमेर रोड, ब्यावर (राज०); प्राप्ति स्थान श्रीमती मनोरमा 'दीवान', श्री महावीर भवन, महिमा लेडीज एवं स्टेशनरी सेन्टर, पीपल वाली माता, दत्तपुरा, मोरेना ४७६००१ (म० प्र०); प्र० सं० २००८; पृ० २००+२३; मूल्य रु० ५०/-

छन्दबद्ध प्रणीत इस काव्य कृति में आशुकवि एवं प्रतिष्ठाचार्य पं० पवन कुमार जैन 'दीवान', जो संस्कृत में एम०ए० और शास्त्री तथा जैन दर्शनाचार्य हैं, ने २२ सिद्धक्षेत्र, ४८ अतिशय क्षेत्र, ६ कल्याणक क्षेत्र, ४ कला तीर्थ और ६ ज्ञान तीर्थ सहित भारत के कुल ८६ दिगम्बर जैन तीर्थों और ११ प्रमुख जैन पर्वों का गुणगान करने के अनन्तर दिगम्बर साधु की वन्दना और सराक बन्धुओं की समीक्षा की है। अन्तिम भावाष्टक में समसामयिक परिदृश्य से मन में उद्भूत अपनी पीड़ा को कुशलता से अभिव्यक्त करने में धर्मनिष्ठ कवि चूका नहीं है। प्रमुख दिगम्बर जैन तीर्थों और प्रमुख जैन पर्वों का परिचय पाने के लिये कृति उपयोगी है। इसके प्रणयन हेतु रचनाकार साधुवाद के पात्र हैं।

(९) जयन्तसेन सतसई भाग द्वितीय : रच० आचार्य श्रीमद् विजय जयन्तसेन सूरीश्वर म० सा०; प्र० एवं प्राप्ति स्थान श्री राजराजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, शेखनोपाड़ो, रिलिफ रोड, अहमदाबाद; प्र० सं० २००५; पृ० ७५; मूल्य रु० २५/-

यद्यपि हिन्दी साहित्य में 'दोहा' छन्द का उपयोग चन्द्रबरदाई, कबीर, तुलसी, रहीम प्रभृति अनेक प्राचीन कवि करते रहे किन्तु सात सौ दोहों का संकलन कर 'सतसई' नाम देने की परिपाटी रीतिकाल की देन है। फलस्वरूप 'बिहारी सतसई', 'वृन्द सतसई', 'मतिराम सतसई' 'विक्रम सतसई', 'वीर सतसई', 'श्रृंगार सतसई' आदि प्रकाश में आईं। उसी कड़ी में बज गोत्रीय खण्डेलवाल जैन बिरधीचन्द्र कविनाम 'बुधजन' ने भी "ना काहू की प्रेरना, ना काहू की आस, अपनी मति तीखी करन, वरन्यो वरन विलास।।" की भावना से स्वान्तः सुखाय ईस्वी सन् १८२२ की ज्येष्ठ कृष्ण

अष्टमी को ढूंढार प्रदेश (राजस्थान राज्य) के जयपुर नगर में नृप जयसिंह के राज्यकाल में एक सतसई की रचना की थी। 'सतसई' रचना की परम्परा आज भी जीवित है।

राष्ट्रसन्त श्री जयन्तसेन सूरीश्वर जी न केवल श्रमण संस्कृति के उद्गाता और भारतीय दर्शन के ज्ञाता हैं, अपितु कुशल कवि भी हैं और उन्हें एक नहीं दो-दो 'सतसई' की रचना करने का श्रेय है। नीतिपरक दोहों पर एक 'जयन्तसेन सतसई' उनकी १९९६ ई० में प्रकाशित हो चुकी है और लोकप्रियता के कारण उसकी तीन आवृत्तियां निकल चुकी हैं। प्रस्तुत सतसई उसका द्वितीय भाग है और इसमें विविध विषयक ७०३ दोहे समाहित हैं। इन सतसइयों की रचना कर सूरीश्वर जी ने भारती के भण्डार को तो समृद्ध किया ही है काव्यरसिकों को भी ये तृप्त करेंगी यह निस्सन्देह है।

(१०) अनुभव की कला ही मोक्ष का द्वार है : संकलनकर्ता श्री जगनमल सेठी; प्र० श्रीमती उमरावदेवी जगनमल सेठी, कुन्दकुन्द भवन, डी-१५४, मोतीमार्ग, बापू नगर, जयपुर-३०२०१५; प्र. सं. २०००; पृ० ६४; मूल्य रु० ५/-

"भव दुःख से भयभीत हूँ चाहूँ निज कल्याण। निज आतम दर्शन करूँ पाऊँ पद निर्वाण।। पर का कुछ नहीं चाहता, चाहूँ निज चिद्काय। निज चिद्काया में लीन हो, मेटूँ सकल विभाव।।" इस भावना से महाकवि बनारसीदास (१५८६-१६४४ ई०) द्वारा **'समयसार नाटक', उत्थानिका,** में वर्णित अनुभव की महिमा "अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रस कूप। अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख सरूप।।" को समझकर अध्यात्म रसिक श्री जगनमल सेठी ने विभिन्न प्राचीन धार्मिक-आध्यात्मिक कृतियों के आधार पर प्रस्तुत कृति 'अनुभव की कला ही मोक्ष का द्वार है' का प्रणयन किया है। इस संसार में आत्मा का कल्याण देहधारी कैसे करे, उसै कृति में ग्रथित अनुभवों के आधार पर समझाया गया है। कृति सभी पाठकों के लिये उपयोगी है। इसके प्रणयन हेतु श्री सेठी साधुवाद के पात्र हैं।

(११) मूकमाटी-मीमांसा (तीन खण्ड) : सं० डॉ० प्रभाकर माचवे एवं आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी; प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३; प्र० सं० २००७; पृ० ५५५+५५५+५५७; मूल्य रु० ४५०/- प्रति खण्ड और रु० ११००/- तीनों खण्ड के पूरे सैट के।

आचार्य श्री विद्यासागर महाराज द्वारा रचित महाकाव्य **'मूकमाटी'** एक ऐसी लोकप्रिय कृति रही जिसे १९८८ से २००६ ई० के मध्य आठ संस्करण प्रकाशित होने और मराठी, बंग्ला, कन्नड, गुजराती व इंगलिश भाषाओं में अनुदित होने का गौरव प्राप्त रहा। उस पर ४१ शोध-प्रबन्ध लिखे गये और लगभग ३०० समीक्षकों द्वारा समालोचनात्मक आलेख निबद्ध किये गये। प्रस्तुत विपुलकाय ग्रन्थ के तीन खण्डों में इस महाकाव्य पर विद्वज्जगत की समीक्षा को सम्पादक मंडल द्वारा इस आशा से इस प्रकार संजोया गया है कि पाठकवृंद कृति का पूर्ण परिचय ही नहीं पा सकें अपितु रचनाकार से संवाद का लाभ भी उठा सकें।

हमने भी **'मूकमाटी'** महाकाव्य पर अपने विचार **शोधादर्श-१६-१७** (अप्रैल व जुलाई, १९९२ संयुक्तांक) में पृष्ठ ९१ पर प्रकाशित किये थे। यह देखकर विस्मय हुआ कि प्रस्तुत विशालकाय ग्रन्थ में उनका उल्लेख नहीं है।

(१२) मैं गधा हूँ : ले० श्री अजित कुमार वर्मा; प्र० श्रीमती सरला वर्मा, कवि कुटीर, २४६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-२२६००४; प्र० सं० २००८; पृ० ७८; मूल्य रु० १००/-

किसी भी कृति की सार्थकता यही है कि पाठक पढ़ना प्रारम्भ करे तो उसे पूरा पढ़ने के बाद दम ले। इस कसौटी पर श्री अजित कुमार वर्मा द्वारा हास्य-व्यंग्य विद्या में प्रणीत २१ निबन्धों का यह संग्रह सौ टंच खरा उतरता है। संग्रह के शीर्षक एवं प्रथम निबन्ध "मैं गधा हूँ" में ही एक अनूठे व्यंग्य का आभास होता है। गधे के सभी गुणों का विधिवत उल्लेख करते हुए लेखक ने यह स्वीकारोक्ति भी की है कि "अब तो मुझे गधा होने पर गर्व होने लगा है, जिसका खाता हूँ उसका साथ निभाता हूँ। स्वामी के प्रति ईमानदार रहता हूँ। नेताओं की भांति राजनीति में लिप्त नहीं रहता।"

अन्य निबन्धों के नाम हैं- बाबू, मरने के बाद, चमचा, नेता, साहब, बुढ़ापा, ग्राहक, खुल गया-खुल गया, आँखें, डर, बाबू और बॉस, किस्सा किराये का, पीर-बाबर्ची-भिश्ती-खर, विश्वमोहिनी, लक्ष्मी का वाहन, गुरुआ तो सस्ता भया, कौन बनेगा मेरा पति, सेवानिवृत्ति, जनता जनता की वैरी और यमराज की चिंता।

तीन-चार पृष्ठों के लघुकाय सभी निबन्धों की भाषा मुहावरेदार, सहज और सरस है। लोकोक्तियों के सयुक्तिक प्रयोग से भाषा प्रवाहपूर्ण हो गयी है। अपने पिता स्व० शारदा प्रसाद भुशुण्डि जी की कविताओं के उद्धरण द्वारा लेखक ने जहाँ एक ओर

कथानक को चुटीला बनाया है, वहीं उन्होंने अपनी पैतृक बौद्धिक विरासत को भी रेखांकित कर दिया है। यह रोचक कृति साहित्य जगत में उचित स्थान प्राप्त करेगी। इसके प्रणयन हेतु लेखक को साधुवाद!

(१३) वर्णी पत्र सुधा : सं० श्री नरेन्द्र विद्यार्थी; प्र० श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन, सन्मति ट्रस्ट, बी-२१ कहान नगर, एन०सी० केलकर रोड, दादर (प०), मुम्बई ४०००२८; द्वि० सं० २००८; पृ० ३८४; मूल्य रु० १५०/-

आध्यात्मिक सन्त पू० गणेश प्रसाद वर्णी (१८७४-१९६१ ई०) द्वारा समय-समय पर जन उद्बोधन हेतु अनेक त्यागियों, श्रीमन्तों और श्रावकों को जो पत्र लिखे गये वे अपनी गम्भीरता और सहजता के लिये आज भी प्रासंगिक हैं। उनके स्वयं अपने नाम ईसरी में माघ शुक्ल १३, सं० १९९९ (फरवरी १९४२ ई.) को लिखे गये पत्र के साथ २७ त्यागी ब्रह्मचारियों को लिखे गये ३४९ पत्रों और ६ ब्रह्मचारिणी माताओं को लिखे गये ११९ पत्रों का एक संकलन सन् १९५७ ई० में **'पत्र पारिजात'** नाम से वर्णी जैन ग्रन्थमाला, काशी, से प्रकाशित हुआ था। पत्रों के संकलक व संपादक वर्णीजी के अनन्य भक्त छतरपुर निवासी श्री नरेन्द्र विद्यार्थी रहे। वर्षों से उक्त संकलन की अनुपलब्धता को लक्ष्य करके मुम्बई की श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन ने इसे **'वर्णी पत्र सुधा'** नाम से पुनः प्रकाशित किया है। इन ४६९ पत्रों में सर्वाधिक ८६ पत्र ब्र० मंगलसेन के नाम हैं, दूसरे नम्बर पर ६६ पत्र ब्र० सुमेरचन्द भगत और तीसरे नम्बर पर ५० पत्र भगिनी महादेवी के नाम हैं। इन पत्रों से जहाँ एक ओर पू० वर्णी जी की मनोदशा का भान होता है वहीं समाज और उनके सम्पर्क में रहे व्यक्तियों की दशा-दिशा पर भी प्रकाश पड़ता है। संकलन को समाज के सम्मुख लाने हेतु प्रकाशक साधुवाद के अर्ह हैं।

(१४) श्रीकलिगीता : रचयिता पं० काशीनाथ गोपाल गोरे; प्र० श्रीमती वीणा गोरे, ई-५१, पीली कालोनी, महानगर विस्तार, लखनऊ-२२६००६; प्र० सं० २००८ ई०; पृ० १६४+७; मूल्य रु० २००/-

महाभारत युद्ध के अवसर पर कुन्ती पुत्र अर्जुन के अपने ही बन्धु-बान्धवों और गुरुजनों से युद्ध के लिये संकोच में पड़ने पर उनके सारथी श्रीकृष्ण ने उन्हें धर्मनीति, राजनीति, कूटनीति आदि समझाते हुए तरह-तरह से प्रबोधा था और युद्ध के लिये तत्पर किया था। उन दोनों के मध्य का वह संवाद और उपदेश द्वापर युग में अठारह

अध्यायों में विश्वविश्रुत ग्रन्थ **श्रीमद्भागवद्गीता** नाम से निबद्ध हुआ था। उत्तर प्रदेश शासन में कई वर्ष तक संयुक्त मुख्य निर्वाचन अधिकारी रहे पं० गोरे का आजकल के नेताओं, मंत्रियों और अधिकारियों से निरन्तर सम्पर्क रहा। उन्हें उनके चरित्र को परखने का खूब अवसर मिला। अपने उस अनुभव के आधार पर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्री गोरे ने गीता के श्लोकों में यत्किंचित् शाब्दिक परिवर्तन द्वारा उन्हें वर्तमान राजनीति पर घटित करते हुए इस व्यंग्यात्मक काव्य **श्रीकलिगीता** का प्रणयन किया है। इसमें यत्र-तत्र हास्य की भी छटा है। सरल, सरस भाषा में कृति प्रणीत है। हिन्दी पाठकों की सुविधार्थ उन्होंने सभी श्लोकों का हिन्दी भाषान्तर भी दे दिया है। अन्त में १६ श्लोकों में कलिकाल की महत्ता का वर्णन करने वाली अपनी रचना 'कलिकालोऽयम्' भी दी है। संस्कृत और हिन्दी पाठकों का समान रूप से मनोरंजन करने वाली, वर्तमान राज नेताओं आदि पर करारा प्रहार करने वाली यह कृति रचनाकार की विलक्षण काव्य प्रतिभा का प्रसून है।

(१५) आप बनें सर्वश्रेष्ठ : ले० श्री जिनेश कुमार जैन; प्र० श्रुत संवर्द्धन संस्थान, प्रथम तल, २४७, दिल्ली रोड, मेरठ-२५०००२; द्वि सं० २००८; पृ. ७४; मूल्य रु० २०/-

लेखक ने स्व विकास की समीक्षा और अपने बच्चों के विकास की अवस्था के दौरान अपने अनुभव और चिन्तन में मनुष्य के विकास के लिये जो उपयोगी पाया उसे ३० शीर्षकों के अन्तर्गत पाठकों के मार्गदर्शन और प्रेरणा हेतु इस कृति में गुम्फित कर दिया है।

(१६) कत्लखाने : १०० तथ्य : ले० डॉ० नेमीचन्द जैन; प्र० करुणा अंतर्राष्ट्रीय, ७०, शंबुदास स्ट्रीट, चेन्नै-६००००१; नवम संस्करण २००८; पृ० ३६; मूल्य रू० ३०/-

मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच मैत्री और करुणा के रिश्ते के पक्षधर 'तीर्थंकर' और 'शाकाहार क्रान्ति' मासिकों के सम्पादक रहे (स्व.) डॉ० नेमीचन्द जैन (इन्दौर) ने देश में कत्लखानों को बढ़ाने की तेजी से पनप रही प्रवृत्ति पर प्रहार करने हेतु इस कृति का प्रणयन किया था। कृति में कत्लखानों की विद्रूपता एवं क्रूरता का सचित्र दिग्दर्शन कराया गया है।

(१७) ज्ञान सागर जी की ज्ञान साधना : ले० मुनि श्री चन्द्रसागर महाराज; प्र० धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, महिला आई० टी० आई० के सामने, ज्वाय स्कूल के बाजू में, खुरई रोड, सागर; प्र० सं० २००८; पृ. ६४; मूल्य २०/-

प्रस्तुत पुस्तक के खण्ड (क) में आचार्य ज्ञानसागर महाराज की जन्म से समाधिमरण पर्यन्त १८९२ ई० से १९७३ ई० तक की जीवन झांकी और चिन्तन बिन्दु, खण्ड (ख) में उनके सम्बन्ध में उनके शिष्य आचार्य विद्यासागर महाराज से सुने गये विविध संस्मरण तथा खण्ड (ग) में श्रद्धांजलि स्वरूप उन पर आलेख 'जीवित जीवन' समाहित है।

(१८) सत्यान्वेषी : प्रस्तोता मुनि श्री चन्द्रसागर एवं मुनि सुव्रत सागर महाराज; प्र० धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, खुरई रोड, सागर; प्र० सं० २००८; पृ० १२०; मूल्य रु० ३५/-

इस कृति में बालक विद्याधर, जो अब आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के रूप में प्रतिष्ठित हैं, के बचपन के किस्से संजोये गये हैं।

(१९) श्रायसपथ : प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर महाराज; प्र० धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, खुरई, सागर; प्र० सं० २००८; पृ० ७१; मूल्य रु० २५/-

इस धार्मिक कृति का प्रणयन मुनिराज ने १८ बिन्दुओं पर १७ प्रकार के छन्दों का प्रयोग करके २२५ श्लोकों की रचना द्वारा किया है।

(२०) सहज-आनन्द (पुनर्जन्म अंक, अप्रैल-जून २००८) : श्री मेघराज जैन 'गर्ग द्वारा सम्पादित और मेघ प्रकाशन, २३९, गली कुंजस, दरीबा कलां, चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित।

१९ अप्रैल, २००८ को दिवंगत हुए पूर्व सम्पादक पं० दुर्गा प्रसाद शुक्ल की स्मृति को समर्पित त्रैमासिक के इस अंक में अन्य विषयक रचनाओं के साथ पुनर्जन्म सम्बन्धी रचनाओं की बहुलता है। यद्यपि पुनर्जन्म सम्बन्धी कथाओं को सत्यकथा का चोला पहनाकर उसकी प्रतीति का प्रयास किया गया है, यह आस्थागत विषय है। सब सहमत हों, यह आवश्यक नहीं। अंक का संयोजन-सम्पादन अच्छा हुआ है।

(२१) जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-२ : प्रणेता आगम मनीषी श्री त्रिलोक मुनि जी; प्र. जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, २११, चन्द्र प्रभु अपार्टमेन्ट,

७६/१०, वैशाली नगर, राजकोट-३६०००७; सं. २००८; पृ. २८; श्वेताम्बर आगमों के प्रश्नोत्तर का संकलन-प्रकाशन १० भागों में प्रस्तावित है और १० भागों के पूरे सैट का मूल्य रु. ६००/- है। प्रस्तुत भाग-२ में **स्थानांग सूत्र** और **समवायांग सूत्र** सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं।

(२२) प्रेरणा के दीप (श्री सतीश जैन अभिनंदन-ग्रन्थ) : प्रधान सम्पादक डॉ. राजाराम, सम्पादकद्वय डॉ. सुदीप जैन और डॉ. गोपीलाल 'अमर'; प्र. अहिंसा इण्टरनेशनल, जीवन विला, १११ प्रथम मंजिल, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; सं. २००८ ई.; पृ. ५२२ +१२; मूल्य रु. २५१/-

२२ अक्टूबर, १९३० ई. को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिलान्तर्गत नहटौर कस्बे में एक संभ्रांत धर्मनिष्ठ जैन परिवार में जन्मे और सन् १९५७ ई. में केन्द्र सरकार के 'पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ' में सेवा के सिलसिले से नई दिल्ली जा बसे श्री सतीश कुमार जैन, एम.ए., एल-एल. बी., प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि, सामाजिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक-शैक्षणिक गतिविधियों में अभिरुचि रखने वाले रहे। उन्हें अनेक स्थानीय और अखिल भारतीय संस्थाओं से सम्बद्ध रहने और उनके विभिन्न पदों को सुशोभित करने का सौभाग्य प्राप्त रहा। 'अहिंसा इण्टरनेशनल' और 'वर्ल्ड जैन कांग्रेस' संस्थाओं के तो वह संस्थापक और वर्षों महासचिव रहे और वर्तमान में वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं। उन्हें त्रैमासिक द्विभाषी पत्रिका 'Ahimsa Voica' के सम्पादन और विविध विषयों पर अनेक खोजपूर्ण लेख एवं साहित्यिक कृतियों के प्रणयन का श्रेय रहा है। सम्पर्क-प्रवीण एवं भ्रमणशील सतीश जी को देश-विदेश की यात्रा करने का भी पर्याप्त सुयोग बना। फलतः उन्हें जैन मनीषा और सामाजिकता के क्षेत्र में भारत ही नहीं बाहर विदेशों में भी अपनी पहचान स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ और अनेक उपाधियों से वह सम्मानित हुए।

ऐसे बहुआयामी प्रतिभा के धनी भाई सतीश कुमार जी को अर्पित प्रस्तुत विशालकाय अभिनन्दन ग्रन्थ सात खण्डों में निबद्ध है। प्रथम खण्ड में २३ मंगल-संदेश; खण्ड-२ में उनके सम्बन्ध में ३१ मनीषियों और स्वजनों के संस्मरण एवं अभिनन्दन; खण्ड-३ में उनका जीवन-परिचय एवं अभिनंदन पत्रावली तथा खण्ड-४ में चित्रों के झरोखे से उन्हें, उनके परिवार और इष्ट-मित्र आदि को सज्जित किया गया है।

खण्ड-५ में २२८ पृष्ठों में जैन धर्म-दर्शन, साहित्य-संस्कृति-कला आदि विविध विषयों पर ५४ विद्वज्जन के हिन्दी आलेख तथा खण्ड-६, जो डॉ. गोपीलाल 'अमर' द्वारा सम्पादित है, में १६२ पृष्ठों में इसी प्रकार ३७ मनीषियों के विविध विषयक अंग्रेजी आलेख संजोये गये हैं। इन आलेखों में 'भारतवर्ष का एक प्राचीन जैन-विश्वविद्यालय' और 'Glimpses of Jaina Cultural Heritage' आलेख (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के, 'Awakening among the Jains during 19th-20th Centuries' आलेख डॉ. शशि कान्त का तथा 'The Jain Way of Life' पर हमारा लेख समाहित है। अन्तिम खण्ड-७ में अहिंसा इण्टरनेशनल की कार्यकारिणी, उसके अध्यक्ष, ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक तथा खण्ड-५ व ६ के लेखक-लेखिकाओं का परिचय दिया गया है।

श्री सतीश कुमार जी सदृश प्रेरणा-दीप के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व की गरिमा के अनुरूप ज्ञान-भण्डार स्वरूप यह भव्य ग्रन्थ संयोजित-सुसम्पादित करने हेतु सम्पादक मण्डल साधुवाद के पात्र हैं। अहिंसा इण्टरनेशनल ने इसके प्रकाशन द्वारा अपने संस्थापक के प्रति सच्ची कृतज्ञता ज्ञापित की है।

(२३) मेरी अमेरिका यात्रा (संस्मरण एवं अनुभव) : ले (प्रा.) नरेन्द्र प्रकाश जैन; प्र. श्रुत सेवा निधि न्यास, १०४-नई बस्ती, फिरोजाबाद-२८३२०३; २००६; पृ. ४६; मूल्य धर्म-प्रभावना। सिद्धहस्त लेखक-सम्पादक, सरस्वती के वरदपुत्र, धर्मनिष्ठ सुश्रावक, अनुभवी अध्यापक, प्रवचन पटु, प्रखर चिन्तक प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन पर्याप्त यश-धन के स्वामी हैं। स्वयं उनके कथनानुसार, पच्चीस वर्ष की वय से लेकर ७५ वर्ष की आयु-सीमा स्पर्श करते विगत ५० वर्षों में उन्हें भारत में तो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और मुम्बई से लेकर तिनसुकिया तक सभी जैन-बहुल प्रदेशों में खूब यात्रा करने का अवसर मिलता रहा। पुण्योदय से उनके मन के किसी कोने में दबी-पड़ी विदेश-भ्रमण-दर्शन की लालसा भी वय के इस पड़ाव पर संयोग से पूरी हो गयी। वह "जैन सेण्टर ऑफ नार्दर्न कैलीफोर्निया" के अध्यक्ष श्री प्रकाश चन्द्र जैन और उनके परिवार के आत्मीय आमन्त्रण पर सानहौजे के जैन मंदिर में पर्यूषण पर्व पर प्रवचन हेतु २६ अगस्त, २००८ ई. को अपने घर से निकलकर ८ अक्टूबर को

४० दिन का प्रवास पूर्ण कर अपने घर वापस जा पहुँचे और फौरन फॉरेन रिटर्न्ड हो गये। यूं तो सभी भ्रमण-यात्राएं उनका अनुभवजन्य ज्ञान बढ़ाती रहीं, इस विदेश-यात्रा का विशेष प्रभाव उनके मन पर पड़ा। अस्तु अपनी अमेरिका यात्रा के संस्मरणों और अनुभवों को बड़ी कुशलता से सरस-रोचक, भाषा-शैली में निबद्ध कर इस पुस्तिका के रूप में उन्होंने पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित कर डाला। पहले इक्कीस दिन सानहौजे में बितानेके अनन्तर अमेरिका स्थित अन्य जैन केन्द्रों को देखने की लालसा से उन्होंने क्रमशः वाशिंगटन, वर्जीनिया, अटलाण्टा और आरलेण्डो का भ्रमण किया और सानहौजे होते हुए वह घर लौट आये। इस अमेरिका प्रवास में अपनी दिनचर्या का पूरा लेखा-जोखा तो उन्होंने इस पुस्तिका में दिया ही है साथ ही उन्होंने वहाँ और जो कुछ देखा, जाना-समझा वह भी बड़ी सच्चाई और निष्पक्षता से व्यक्त कर दिया है। अमेरिका और वहाँ की संस्कृति आदि के जिन पहलुओं ने उनके मन को अभिभूत किया उनकी दिल खोलकर सराहना की और वहाँ जो बातें बुरी लगीं उनका उल्लेख करने में संकोच नहीं किया। अनुभूतिजन्य इस कृति में यत्र-तत्र शेरो-शायरी, कविताओं, नीति वाक्यों, मुहावरों और आँचलिक भाषा के प्रयोग ने चार चाँद लगाये हैं और इसे संग्रहणीय बना दिया है। एतदर्थ वह साधुवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त हमें **'शोधादर्श'** के विनिमय में प्राप्त हुई सभी आम्नायों की विविध धार्मिक-सामाजिक (साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक) पत्र-पत्रिकाओं तथा निम्नलिखित द्वैमासिक व त्रैमासिक शोध-पत्रिकाओं की प्राप्ति साभार स्वीकार की जाती है-

(१) Jain Journal, जैन भवन, कोलकाता, अप्रैल, २००८

(२) **प्राकृत तीर्थ,** बाहुबली प्रकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोल, जुलाई-सितम्बर, २००८

(३) **श्रमण,** पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, जुलाई-सितम्बर, २००८

(४) **अनेकान्त दर्पण,** अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, बीना, सितम्बर-नवम्बर, २००८

(५) **तुलसी प्रज्ञा,** जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ, अक्टूबर-दिसम्बर, २००८

(६) **अर्हत्-वचन**, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, अक्टूबर-दिसम्बर, २००८

(७) **सूर सौरभ,** सूर स्मारक मण्डल, चेन्नै, अक्टूबर-दिसम्बर, २००८ जनवरी-फरवरी २००९ तथा

(८) **कुसुमांजलि,** आत्म बल्लभ सोसायटी, दिल्ली, नवम्बर-दिसम्बर, २००८ जनवरी-फरवरी २००९

(९) **विमल विद्या**, विमल विद्या श्रुत संस्थान, जयपुर, जनवरी-मार्च, २००९

(१०) मानस-चन्दन, सारस्वत सदन, सीतापुर, जनवरी-मार्च,२००९

-श्री रमा कान्त जैन

आभार

श्री जितेन्द्र प्रकाश अग्रवाल, सी-४७, एफ.सी.आई. कॉलोनी, गोरखपुर ने **'शोधादर्श'** को रु० २५१/- भेंट किये।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०, के उपाध्यक्ष **श्री कन्हैया लाल जैन**, कटारी टोला, चौक, लखनऊ ने अपनी छोटी बहन श्रीमती इन्द्रा देवी जैन (गणेशपुर) के आकस्मिक निधन पर उनकी पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु० १००/- भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, पाण्डुनगर, कानपुर ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला टण्डन की १६वीं पुण्यतिथि पर उनकी पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु० ५०/- भेंट किये।

डॉ० शशिकान्त-रमाकान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पिताजी इतिहास-मनीषी (स्व०) डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के ९८वें जन्म दिवस पर उनकी पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु० १०१/- भेंट किये।

श्रीमती आशा जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपनी माताजी (स्व०) प्रकाशवती जैन की छठी पुण्यतिथि पर उनकी पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु० ५१/- भेंट किये।

समाचार विविधा

'मूकमाटी-मीमांसा' का लोकार्पण

५ अक्टूबर, २००८ ई० को श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र रामटेक, जिला-नागपुर, में आयोजित भव्य समारोह में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज द्वारा प्रणीत महाकाव्य **'मूकमाटी'** पर तीन खण्डों में निबद्ध **'मूकमाटी-मीमांसा'** ग्रन्थ का लोकार्पण क्रमशः मुख्य अतिथि श्री ओम प्रकाश जैन (सूरत), विशिष्ट अतिथि श्री प्रमोद सिंघई (नई दिल्ली) तथा कार्यक्रम अध्यक्ष श्री प्रभात जैन (मुम्बई) द्वारा किया गया।

केलीफोर्निया में जैन मंदिर

दक्षिण केलीफोर्निया के उत्तरीय ओरंज काउन्टी सिटी पार्क में वहाँ रह रहे १५०० जैन धर्मावलम्बियों ने वर्ष २००८ ई० में स्वद्रव्य से २० मिलियन डॉलर लागत से संगमरमर और चूरे के पत्थरों से एक भव्य जैन मंदिर का निर्माण कराया है। यह मंदिर भारत के प्राचीन जैन मंदिरों की शिल्प कला के अनुसार है। इसमें २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं प्रतिष्ठापित हैं और जैन कल्चरल सेन्टर द्वारा जैन धर्म की हिन्दी एवं गुजराती में शिक्षा देने तथा एक विशाल पुस्तकालय की व्यवस्था किये जाने से यह जैन संस्कृति का धाम बन गया है।

डॉ० प्रकाश चन्द्र जैन का अभिनन्दन

६ नवम्बर को इन्दौर में महावीर ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप फेडरेशन इन्दौर तथा जैन विकास परिषद आगरा के संयुक्त तत्वावधान में शिक्षाविद, श्रमण संस्कृति एवं जैन दर्शन के अध्येता, समाजसेवी, हिन्दी साहित्यकार डॉ० प्रकाश चन्द्र जैन का भव्य अभिनन्दन समारोह आयोजित हुआ।

श्री मैना सुन्दर भवन, आरा का शताब्दी वर्ष समारोह

आरा (बिहार) में श्री मैना सुन्दर भवन दिगम्बर जैन धर्मशाला ट्रस्ट की स्थापना के १०० वर्ष पूर्ण होने पर ६ से १४ नवम्बर तक ९ दिवसीय धार्मिक अनुष्ठान भक्ति भावना के साथ सम्पन्न हुआ। समापन समारोह में मुख्य अतिथि बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के प्रशासक आचार्य किशोर कुणाल थे। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा, "धर्म के माध्यम से परोपकार होता रहे ऐसा प्रयास करें।"

आदर्श विवाह : अनुकरणीय पहल

अ० भा० जैन पत्र सम्पादक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष, क्रान्तिकारी विचारक एवं समाज सुधारक श्री रवीन्द्र मालव, ग्वालियर की सुपुत्री आयु० श्रुति का चि० दीपक जैन के संग पावन परिणय समारोह २२ नवम्बर की मध्याह्न कई अनुकरणीय पहलों के साथ सम्पन्न हुआ। विवाहोत्सव के पूर्व सगाई, टीका आदि की कोई रस्म नहीं हुई। **स्वयं वर ने सभी अवसरों पर नेग के रूप में मात्र एक रुपया ही स्वीकार किया तथा विवाह सम्बन्धी समस्त कार्यक्रम स्वागत, आशीर्वाद समारोह, पाणिग्रहण संस्कार तथा प्रीतिभोज आदि दिन में ही सम्पन्न हुए।**

श्रवणबेलगोल में राष्ट्रीय प्राकृत संगोष्ठी

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोल, में २४ व २५ नवम्बर को प्राकृत भाषा, व्याकरण और कोश विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई। प्रमुख अतिथि मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० सी० पी० सिद्धाश्रमा थे।

शिखरजी महोत्सव

सुप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी को विश्व स्तर पर पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से जिला प्रशासन एवं राज्य पर्यटन विभाग द्वारा २०-२२ दिसम्बर को तीर्थक्षेत्र पर तीन दिवसीय शिखरजी महोत्सव मनाया गया।

'द ताव ऑफ जैना साइंसेज' का लोकार्पण

२१ दिसम्बर को जबलपुर में प्रो० एल० सी० जैन द्वारा प्रणीत 'द ताव ऑफ जैना साइंसेज' के द्वितीय संस्करण का लोकार्पण हुआ। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति डॉ० एम० पाल खुराना और मुख्य वक्ता उक्त विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ० शिव प्रसाद कोष्ठा रहे।

विश्वशान्ति अहिंसा सम्मेलन एवं भ० पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक महोत्सव

२१-२२ दिसम्बर को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) में विश्व शान्ति अहिंसा सम्मेलन एवं भ० पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाया गया। सम्मेलन का उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल ने किया। अपने उद्बोधन में राष्ट्रपति ने कहा कि भगवान शान्तिनाथ की जन्मभूमि होने से हस्तिनापुर में विश्व शान्ति सम्मेलन का आयोजन करना सार्थक है। शान्ति और अहिंसा एक-दूसरे के पूरक हैं।

दिल्ली के महाबलीपुरम् तीर्थ में चरण स्थापना व महामांगलिक

२८ दिसम्बर को दिल्ली के मेहरौली क्षेत्र में श्री हरखचंद नाहटा परिवार द्वारा निर्मित जिनालय महाबलीपुरम् में गुरु-चरण-स्थापना और महामांगलिक कार्यक्रम भव्य समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

श्री अजित प्रसाद जैन का पुण्य स्मरण

लखनऊ में १ जनवरी, २००६ ई० को ६२वें जन्म दिन पर निर्भीक पत्रकार एवं समाजसेवी स्व० श्री अजित प्रसाद जैन का पुण्य स्मरण किया गया। वह **'शोधादर्श'** (लखनऊ) और **'समन्वय वाणी'** (जयपुर) पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक तथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, के संस्थापक महामंत्री रहे थे। अपने जीवनकाल में अनेक स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर की धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। एक धर्मनिष्ठ सुश्रावक के रूप में उनकी ख्याति थी। पत्रकारिता धर्म का सम्यक् निर्वहन करते हुए अपने सम्पादन काल में उन्होंने **'शोधादर्श'** में एक सामयिक पत्रिका का रस भर दिया था। उनकी प्रखर लेखनी से प्रसूत लेखों, सम्पादकीयों और समाचार विमर्श के अन्तर्गत सामयिक टिप्पणियों ने अगणित प्रबुद्ध पाठकों को उनका प्रशंसक बना दिया था।

१ जनवरी को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के शोध पुस्तकालय में उनके चित्र पर माल्यार्पण कर श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये। तदनन्तर अपराह्न में ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, की साधारण सभा की बैठक में उनके चित्र पर माल्यार्पण और दीप-प्रज्वलन कर उनका पुण्य स्मरण किया गया। सर्वप्रथम श्री नलिन कान्त जैन ने उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला। तदनंतर सर्वश्री आदित्य जैन, धनेन्द्र कुमार जैन, राकेश कुमार जैन, कन्हैया लाल जैन, नरेश चन्द्र जैन और डॉ० शशि कान्त ने स्व० अजित प्रसाद जी से सम्बन्धित अपने संस्मरण सुनाये और उनके प्रति भावभीने उद्गार व्यक्त किये। इन सभी उद्गारों में उनके निर्भीक स्पष्टवादी व्यक्तित्व को विशेष रूप से रेखांकित किया गया। श्री लूणकरण नाहर जैन और श्री रमा कान्त जैन ने उन्हें काव्यांजलि अर्पित की तथा श्री नाहर ने साध्वी सिद्धकंवर जी महाराज द्वारा रचित आध्यात्मिक भजन **"उठ जाग मेरे चैतन्य प्रभु, तू अजर अमर अविनाशी है। तू मृत्यु से भय क्यों खाता, तू शाश्वत घर का वासी है।"** सुनाकर वातावरण को रससिक्त किया।

भुशुण्डि साहित्य संस्थान में काव्य-संध्या

१७ जनवरी को कवि-कुटीर, राजेन्द्र नगर, लखनऊ में भुशुण्डि साहित्य संस्थान के स्थापना दिवस और हास्य कवि अनिल 'बाँके' के जन्म दिवस पर आयोजित काव्य-संध्या की अध्यक्षता गीतकार रवीन्द्र कुमार 'राजेश' ने की। मुख्य अतिथि व्यंग्यकार श्री रमा कान्त जैन रहे और संचालन गज़लकार संजय मेहरोत्रा 'हमनवां' ने किया।

जैन बौद्ध शास्त्रेषु तत्व विमर्शः संगोष्ठी

१८ जनवरी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन-बौद्ध दर्शन विभाग द्वारा 'जैन-बौद्ध शास्त्रेषु तत्वविमर्शः संगोष्ठी' सम्पन्न हुई। अध्यक्ष पूर्व डीन कला संकाय प्रो. सुदर्शनलाल जैन और मुख्य अतिथि चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो. धनराज शर्मा रहे। संगोष्ठी में सात शोध आलेखों का वाचन हुआ जिनमें से पाँच आलेख जैन दर्शन में अजीव तत्व, आस्रव तत्व, बन्ध तत्व, निर्जरा तत्व और जीव तत्व विषयक थे, एक बौद्ध सर्वास्तिकवाद में आयतन का स्वरूप विषयक तथा एक विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि में विज्ञान का स्वरूप विषय पर था। अध्यक्ष ने विभिन्न भारतीय दर्शनों में तात्विक व्यवस्था का वर्णन करते हुए जैन-बौद्ध की तत्व व्यवस्था की मौलिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए अनेकान्तात्मक पद्धति से वस्तु-विश्लेषण पर बल दिया।

जन्म दिन पर याद किये गये इतिहास-मनीषी

६ फरवरी को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी (स्व०) डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के ९८वें जन्मदिन पर स्मृति-गोष्ठी द्वारा उनका पुण्य स्मरण किया गया। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' और संचालक श्री रमा कान्त जैन रहे। श्रद्धेय डॉक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन से गोष्ठी प्रारम्भ हुई। सौ० सीमा जैन ने डॉक्टर साहब के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। सर्वश्री डी० के० जैन, नरेशचन्द्र जैन, राजीव कान्त, विष्णुदत्त शर्मा तथा सभी सभागत ने उद्गारों द्वारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। डॉ० शशि कान्त ने उनकी जन्म शती के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। कु० पलक जैन ने उनकी रचना का सस्वर पाठ किया। श्री लूणकरण नाहर ने सरस आध्यात्मिक भजन और श्री अनिल बांके व रमा कान्त ने अपनी रचनाओं से वातावरण को रससिक्त किया। अध्यक्ष 'प्रशान्त' की काव्यांजलि से कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

६ फरवरी, १९१२ ई० को मेरठ में जन्मे और ११ जून, १९८८ ई० को लखनऊ मे दिवंगत हुए डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ने १९५६ ई० में शोध-प्रबन्ध '**प्राचीन भारत**

के इतिहास के जैन स्रोत' पर पी-एच०डी० उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारत के इतिहास का गहन अध्ययन-मनन कर **'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि'** कृति का प्रणयन किया था जिसके भारतीय ज्ञानपीठ से चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व-कला, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन, सामाजिक एवं सामयिक विषयों पर हिन्दी और इंगलिश में दो हजार से अधिक लेख आदि प्रकाशित हुए। लगभग ५० कृतियों के प्रणयन का उन्हें श्रेय रहा। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध डॉ० जैन की विद्वत्ता से अभिभूत हो उन्हें **विद्यावारिधि** और **इतिहास-मनीषी** के विरुदों से अलंकृत किया गया था तथा दिल्ली में **'अहिंसा इन्टरनेशनल'** द्वारा सम्मानित किया गया था। सादा, सरल, संतोषयुक्त जीवन जीने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ० जैन स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर की विविध सांस्कृतिक-सामाजिक संस्थाओं एवं प्रवृत्तियों से जुड़े रहे थे।

राष्ट्रीय संगोष्ठी

६-७ फरवरी को नई दिल्ली में भोगी लाल लेहरचन्द इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी द्वारा **'जैन जीवन शैली और उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता'** विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें देश-विदेश के ५० से अधिक विद्वान सम्मिलित हुये और २२ ने अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ० कर्णसिंह, मुख्य अतिथि डॉ० कपिला वात्स्यायन, विशिष्ट अतिथि प्रो० शेलडॉन पोलक एवं प्रो० गणनाथ ओबेसेकरे तथा संगोष्ठी संयोजक डॉ० जितेन्द्र बी० शाह रहे।

डॉ. सागरमल जैन का अमृत महोत्सव

१६ फरवरी को शाजापुर (म.प्र.) में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्वेताम्बर जैन विद्वान डॉ. सागरमल जैन का अमृत महोत्सव मनाया गया। डॉक्टर साहब के शिष्य श्री शिवराजसिंह चौहान मुख्य मंत्री, म.प्र., मुख्य अतिथि रहे तथा श्री पारस जैन, खाद्य आपूर्ति मंत्री, म.प्र., ने अध्यक्षता की।

राष्ट्रीय परिसंवाद

२०-२३ फरवरी को अहमदाबाद में लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर द्वारा **'गुजरात का तत्त्वचिंतन'** विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित हुआ। विश्वकोश नियामक डॉ० धीरूभाई ठाकुर ने उद्घाटन किया और विशिष्ट अतिथि पद्मश्री डॉ० भोलाभाई पटेल मुख्य वक्ता रहे।

उपस्थित साध्वी मंडल ने उन्हें, **'ज्ञान महोदधि'** की उपाधि से अलंकृत किया। इस अवसर पर डॉ. साहब द्वारा सम्पादित **आध्यात्मसार** और **ऋषिभाषित एक अध्ययन** पुस्तकों का विमोचन भी हुआ।

श्री हरखचन्द नाहटा की स्मृति में डाक-टिकट

२८ फरवरी को मुम्बई के राजभवन में महाराष्ट्र के पोस्टमास्टर-जनरल श्री चार्ल्स लोबो द्वारा अपने समय के बहुआयामी प्रतिभा के धनी, उद्योगपति, विमिल्त सांस्कृतिक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे बीकानेर के प्रतिष्ठित श्वेताम्बर जैन घराने में १८ जुलाई, १९३६ ई. को जन्मे और नई दिल्ली में २१ फरवरी, १९९९ ई. को ६२ वर्ष को वय में दिवंगत हुए श्री हरखचन्द नाहटा की स्मृति में प्रस्तुत पाँच रुपये मूल्य का डाक टिकट महाराष्ट्र के महामहिम राज्यपाल श्री एस.सी. जमीर द्वारा नाहटा परिवार एवं गण्यमाण्य की उपस्थिति में जारी किया गया।

जैन मिलन लखनऊ का स्वर्ण जयंती समापन समारोह

१ मार्च की अपराह्न उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी, गोमतीनगर, लखनऊ के प्रेक्षागृह में जैन मिलन लखनऊ का स्वर्ण जयंती वर्ष समापन समारोह सम्पन्न हुआ। मुख्य अतिथि डॉ. योगेन्द्र सिंह, निदेशक, जैन विद्या शोद्य संस्थान थे। इस अवसर पर जैन मिलन लखनऊ की **'स्वर्ण जयन्ती स्मारिका'** का विमोचन हुआ जिसमें मिलन की ५० वर्ष की उपलब्धियों को चित्रावली और आलेखों द्वारा रेखांकित किया गया तथा शाकाहार और संस्कार वर्ष के उपलक्ष में इन विषयों के आलेखों की बहुलता रही। स्मारिका के प्रधान सम्पादक वीर नलिन कान्त जैन हैं। समारोह में जैन मिलन लखनऊ को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले ९१ कार्यकर्ताओं को सम्मानित भी किया गया। उनमें **शोधादर्श** के सम्पादक श्री रमा कान्त जैन और सह सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन भी थे।

उससे पूर्व प्रातःकालीन सत्र में भारतीय जैन मिलन के क्षेत्र सं. १ के क्षेत्रीय अधिवेशन का उद्घाटन नगर स्वास्थ्य अधिकारी डॉ. पी. के. जैन ने किया। क्षेत्रीय मंत्री वीर राजीव जैन ने वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की और अधिवेशन में पधारे क्षेत्रीय शाखा के सभी प्रतिनिधियों का स्वागत सम्मान क्षेत्रीय अध्यक्ष वीर अजय जैन कागजी द्वारा किया गया। राष्ट्रीय उपाध्यक्ष वीर शैलेन्द्र जैन ने शाकाहार, संस्कार एवं स्वर्ण जयन्ती वर्ष के सम्बन्ध में अपने उद्गार व्यक्त किये। इस अवसर पर एक संक्षिप्त काव्य गोष्ठी भी हुई जिसमें सर्वश्री राम बहादुर पिण्डवी 'अधीर', अशोक कुमार पाण्डेय, 'अशोक', वासुदेव बाजपेयी 'अनन्त', सुरेश कुमार आवारा नवीन और रमा कान्त जैन ने काव्य पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन वीर विशाल जैन ने किया और धन्यवाद ज्ञापन वीर नलिन कान्त जैन ने किया।

श्री महावीर जी का लक्खी मेला

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी (राजस्थान) में मंगलवार ७ अप्रैल से शुक्रवार १० अप्रैल तक ४ दिवसीय लक्खी मेला आयोजित है। प्रथम तीन दिन सांस्कृतिक कार्यक्रमों को समर्पित हैं और चौथे दिन विशाल जिनेन्द्र रथ यात्रा निकलेगी।

अभिनन्दन

साध्वी अर्पिता श्री को उनके शोध-प्रबन्ध **'प्राकृत के प्रमुख व्याकरणों का तुलनात्मक अध्ययन'** पर सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ने पी.-एच०डी० उपाधि प्रदान की। निर्देशक डॉ० उदयचन्द जैन रहे।

साध्वी डॉ० सुरेखा श्री को उनके शोध-प्रबन्ध **'पंचपरमेष्ठी विषयक जैन विचारणा अन्य भारतीय दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में'** पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, ने डी. लिट्. उपाधि प्रदान की।

चिकित्सा क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त **डॉ० करण डोसी, जयपुर,** को **'आचार्य देवेन्द्र श्रुत सेवा सम्मान-२००८'** प्रदान किये जाने की घोषणा की गई।

डॉ० सविता जैन, उज्जैन, को जैन साहित्य के लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में समग्र अवदान हेतु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा **वर्ष २००८ का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार** प्रदान किया गया।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन द्वारा संस्थापित श्रुत सेवा निधि न्यास, फिरोजाबाद, के ४ जनवरी, २००६ ई० को सम्पन्न हुए अक्षराभिषेकोत्सव में **डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'** को **मातृवन्दना पुरस्कार** से, **पाण्डेय क्षेमंकर लाल जैन** को **सरस्वती सम्मान** से तथा विदुषी **डॉ० विमला जैन 'विमल'** को **श्रुत सेवा सम्मान** से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ० यायावर की **'अहिंसा परमो धर्मः'** और प्रा० नरेन्द्र प्रकाश जैन की **'मेरी अमेरिका यात्रा'** कृतियों का लोकार्पण भी हुआ।

मध्य प्रदेश में हुए विधानसभा चुनाव में सागर से **श्री शैलेन्द्र जैन,** जबलपुर से **श्री शरद जैन**, कोलारस से **श्री देवेन्द्र जैन**, विदिशा से **श्री राघवत्री भाई,** दमोह से **श्री जयंत मलैया**, भोजपुर से **श्री सुरेन्द्र पटवा**, हुजुट से **श्री जितेन्द्र डागा**, उज्जैन (उत्तर) से **श्री पारस जैन**, मन्दसौर से **श्री यशपाल सिसोदिया** (सब भाजपा से), रतलाम से **श्री पारस सकलेचा जैन** (निर्दलीय) तथा गरोठ से **श्री सुभाष सोजतिया** (कांग्रेस) विजयी घोषित हुए।

राजस्थान विधानसभा चुनाव में खानपुर विधानसभा क्षेत्र से भारतीय जनता पार्टी के **श्री अनिल जैन** विजयी घोषित हुए।

पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश **श्री राजेन्द्रमल लोढ़ा** को उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश चयनित किया गया।

साहित्यकार **श्री देव कोठारी** को अखिल भारतीय मोहनोत महासभा जोधपुर ने इतिहासवेत्ता **'नैणसी मोहनोत पुरस्कार'** के लिये चयनित किया।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी को इंस्टीट्यूट ऑफ जैनोलॉजी, लंदन, की ओर से **'अहिंसा अवार्ड'** प्रदान किया गया जिसे लंदन स्थित हाउस ऑफ कॉमन्स में आचार्यश्री की प्रतिनिधि समणी प्रसन्नप्रज्ञा ने ग्रहण किया।

श्री रवीन्द्र मालव, ग्वालियर, तथा **श्रीमती शकुन्तला गंगवाल** अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष मनोनीत किये गये।

५ फरवरी को कोलकाता में शाकाहार विशेषज्ञ **डॉ० चीरंजीलाल बगड़ा** को ३२वें अन्तर्राष्ट्रीय ओरियन्टल हैरीटेज कान्फ्रेन्स, २००६ के उद्घाटन पर त्रिपुरा के महामहिम राज्यपाल श्री डी० एन० सहाय द्वारा **डॉ० मेघनाद साहा पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

उ० प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ, ने २७ फरवरी को वर्ष २००७ के लिये साहित्यिक पुरस्कारों से जिन साहित्यकारों को सम्मानित किया उनमें उल्लेखनीय हैं- **डॉ० केदारनाथ सिंह** को २.५१ लाख की राशि का **भारत-भारती सम्मान; डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी** को **हिन्दी गौरव सम्मान; श्री रवीन्द्र कालिया** को **लोहिया साहित्य सम्मान, डॉ० बाल शौरि रेड्डी** को **महात्मा गांधी साहित्य सम्मान** (हिन्दी गौरव, लोहिया और महात्मा गांधी साहित्य सम्मान दो-दो लाख की राशि के हैं); **प्रो० अंगने लाल** को एक लाख रुपये का **विद्या भूषण सम्मान; डॉ० परमानन्द जड़िया** और **डॉ० रामाश्रय सविता** को एक लाख रुपये की राशि वाला **साहित्य भूषण सम्मान**; वर्ष २००५ की पुस्तकों पर नामित बीस हजार रुपये के पुरस्कारों के प्रसंग से **श्री मधुकर अस्थाना** को **निराला** और **श्री घनानन्द पांडेय मेघ** को **नजीर अकबराबादी पुरस्कार।**

'जिनवाणी' के सम्पादक **डॉ० धर्मचन्द जैन** जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये।

जैन युवारत्न **श्री हसमुख जैन गांधी (इन्दौर)** दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अतिरिक्त महामंत्री मनोनीत किये गये।

आचार्य ज्ञानसागर जी वागार्थ विमर्श केन्द्र के मानद निदेशक **प्राचार्य अरुण कुमार शास्त्री (व्यावर)** को विज्ञान भवन, दिल्ली में भव्य समारोह में महामहिम राष्ट्रपति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल द्वारा **'सर्वोच्च शिक्षक सम्मान'** से सम्मानित किया गया।

गजरथ समिति टीकमगढ़ एवं भक्त मंडल जबलपुर के अवधान में प्रतिष्ठा समिति के प्रधान श्री कोमलचंद सुनवाहा द्वारा सन्त चरित्र आलेखन में सिद्धहस्त सुप्रसिद्ध साहित्यकार **श्री सुरेश जैन "सरल" (जबलपुर)** को आ. विशुद्धसागर जी के जीवन चरित्र पर प्रणीत उनके ग्रन्थ 'आदर्श श्रमण" के लिये सम्मानित किया गया। साथ ही **जबलपुर के पं. नेमीचंद जैन, डॉ. एल.सी. जैन एवं डॉ. श्रेयांश बड़कुल** को भी उनके बौद्धिक अवदान के लिये सम्मानित किया गया।

श्रीमती लीलाकुमारी जैन, जिला प्रशिक्षण आयुक्त गाइड एवं वरिष्ठ अध्यापिका सेठ मुकनचन्द बगलिया रा.बा.उ.मा. विद्यालय, पाली, को राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री अशोक गेहलोत ने बेडन पावेल के जन्म दिन पर आयोजित समारोह में प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवार्ड **'लक्ष्मी मजूमदार'** प्रदान किया।

'मानस चन्दन' सीतापुर के प्रधान सम्पादक **डॉ. गणेशदत्त सारस्वत** को उनकी उत्कृष्ट रचनाधर्मिता के लिये साहित्य-मण्डल, नाथद्वारा ने **'हिन्दी भाषा भूषण'** की उपाधि से सम्मानित किया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, ने **वर्ष २००८ के अर्हत् वचन पुरस्कारों में डॉ. मारुतिनंदन प्रसाद तिवारी (वाराणसी)** को **प्रथम, डॉ. नारायण लाल कछारा (उदयपुर)** को द्वितीय तथा **श्री हेमन्त कुमार जैन (जयपुर)** को **तृतीय** घोषित किया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये *'शोधादर्श परिवार' अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।*

निःशुल्क उपयोगी जैन वेबसाइट

जैन मैगजीन (www.worldjain magazines.com) इस वेबसाइट पर विश्व भर में हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले ७५ से अधिक जैन मैगजीनों की विस्तृत जानकारी है।

जैन डॉक्टर (www. jaindoctor.com) इसमें विश्वभर में स्थित जैन धर्म के १,०२१ से अधिक डॉक्टरों की जानकारी है। यहाँ आपको उनकी डिग्री, विशेषता और टेलीफोन नंबर, मोबाइल नंबर, पता, उनका ई-मेल और वेबसाइट पता जैसी जानकारी और किस अस्पताल से संलग्न है, यह जानकारी प्राप्त होगी।

जैन सीए (www. jainca.in) यह वेबसाइट एक ऑनलाइन डायरेक्टरी है जिसमें भारत और विश्वभर में स्थित जैन समाज के लिए (चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट) की जानकारी है। यहाँ आपको १,१०० से अधिक जैन सीए की विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी। प्रैक्टिस करने वाले सी. ए. इन्डस्ट्री में काम करने वाले सीए या बिजनेस करने वाले सीए जैसी उनकी व्यावसायिक योग्यता अनुसार जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जैन तीर्थ टेलीफोन डायरी (www. jaintirth.in) इस वेबसाइट में भारत में स्थित ४३० जैन तीर्थों के संपर्क के लिए अद्यतन नंबर दिये गए हैं।

जैन तीर्थयात्रा के माग (www. jaintirthyatra.in) जैन श्रद्धालुओं को अपनी छुट्टियां और समयानुसार जैन तीर्थयात्रा प्रवास का आयोजन करने में इस वेबसाइट से लाभ होगा। यह एक मार्गदर्शिका है, जिसमें जैन तीर्थ यात्रा के लिए ३७ तैयार रूट दिये गये हैं। साथ ही इन तीर्थस्थानों में स्थित धर्मशालायें, भोजनशालायें और तीर्थ के बीच का अन्तर जैसी जानकारियां दी गई हैं।

जैन डिक्शनरी (www. jaindictionary. com) यह वेबसाईट एक डिक्शनरी है जिसमें ३,६०० से अधिक जैन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं।

तीर्थ के नक्शे (www. jaintirthmaps.com) इस वेबसाइट में भारत के राज्य अनुसार ३२ रंगीन नक्शे (कुल ४५० तीर्थ) दिए गए हैं। इन नक्शों के प्रिन्ट लिए जा सकते हैं।

श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवान के जैन तीर्थ (जानकारी और नक्शे) (www. shreeparashwanathbhagwan. com) भारत भर के गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और झारखण्ड आदि राज्यों में स्थित पार्श्वनाथ भगवान के तीर्थों की विस्तृत जानकारी नक्शों के साथ दी गई है।

(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के जन्म दिवस पर काव्यांजलि

डाक्टर ज्योति प्रसाद ज्योति के पुंज महान,
आदर्शों के प्रेरक ज्योतित महिमावान,
जन्म दिवस फिर लेकर आया याद तुम्हारी
नयी सुनहरी स्मृतियां लेकर मनहारी।
यद्यपि जग में नहीं आज तब नश्वर काया,
तब भी तन-मन-जीवन में यश-रूप समाया।
मौन भाव से बसते हो तुम सबके मन में,
प्रति पल तुमको अनुभव करता हूँ जीवन में।
रूप तुम्हारा ज्ञान स्वरूपा निर्मल सत्यम,
विद्यावारिधि, सम्यक् जीवन, सम्यक्दर्शन।
याद तुम्हारी शीतल छाया, ममता-वाणी,
याद तुम्हारी छवि करुणामय जग कल्याणी।
थे इतिहास-मनीषी युग निर्माण कर दिया,
धार्मिक ग्रन्थों में नव-जीवन प्राण भर दिया।
सबके जीवन पर छाया अधिकार तुम्हारा,
जन-जन के मन में विस्तारित प्यार तुम्हारा।
जीवन में अभिशप्त प्राण जब अकुलाता था,
तव छाया में आकर शांति सदा पाता था।
सादा जीवन उच्च विचारों के स्वामी थे,
सत्य अहिंसा दया धर्म के अनुगामी थे।
याद हमें मंदिर में देते थे जो प्रवचन,
सहज सरल भाषा में लाते थे नव-जीवन।
ज्ञानी थे तुम सतत किन्तु अभिमान नहीं था,
अपने उच्चासन का कुछ भी भान नहीं था।
सबकी करते मदद सभी का दुख हरते थे,
निर्भय रहते नहीं किसी से तुम डरते थे।
अमर रहेगा जीवन में यश ज्ञान तुम्हारा,
अमर रहेगा सदा मान सम्मान तुम्हारा।
नत मस्तक होकर 'प्रशान्त' करते वन्दन हैं।
डाक्टर ज्योति प्रसाद तुम्हारा अभिनंदन है,
अभिनंदन है, अभिनंदन है, अभिनंदन है!

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'
डी- ११/६, राजेन्द्रनगर, लखनऊ- ४

वेबसाइट निर्माण की प्रक्रिया म

www. ahinsafederation. org अहिंसा महासंघ की अपनी वेबसाइट के निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा है तथा शीघ्र ही इसका राष्ट्रीय स्तर पर लोकार्पण होगा। कृपया अपने विचार/सुझाव से अवगत करावें। **सम्पर्क करें- डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता (मो.) ०९३३१०३५५६**

www. ajmeraajkal.com जैन संस्कृति के मुख्य केन्द्र रहे अजयमेरू नगर के बारे में समस्त जानकारियों सहित **'अजमेर आजकल'** में प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों की संग्रहणीय सामग्री आदि के बारे में जानकारी। **सम्पर्क करें- श्री अकलेश जैन, अजमेर (मो.) ९८८७०७२८९१**

शोक संवेदन

दिनांक २६ नवम्बर, २००८ ई० को मुम्बई में हुए आतंकी हमलों में नरीमन प्वाइंट पर रेस्तरां में इन्दौर के निर्दोष युवा इंजीनियर **गौरव जैन,** जो मुम्बई में निर्माण कम्पनी अरबन इन्फ्रास्ट्रक्चर में कार्यरत थे, को भी अपने प्राण गंवाने पड़े।

१ दिसम्बर को भोपाल मेमोरियल अस्पताल में गत माह हुई ट्रेन दुर्घटना के उपरान्त आपरेशन एवं उपचार के दौरान ६६ वर्षीय समाजसेवी उद्योगपति **श्रीमंत सेठ दीपचंद जैन** (कनिष्ठ भ्राता श्रीमंत सेठ डाल चन्द जैन, सागर) का निधन हो गया।

६ जनवरी, २००६ ई० की प्रातः ६.३० बजे गनेशपुर, जिला बाराबंकी, निवासी **श्रीमती इन्द्रा देवी जैन** धर्मपत्नी श्री सुरेश चन्द्र जैन का हृदय गति रुकने से आकस्मिक निधन हो गया। बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति की श्रीमती इन्द्रा देवी तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०, के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जैन (कटारी टोला, चौक, लखनऊ) की छोटी बहन थीं।

१७ जनवरी को प्रातः ७.३० बजे संजय गांधी पी० जी० आई०, लखनऊ, में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०, के उपमंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जैन की धर्म पत्नी **श्रीमती राज कुमारी जैन** का निधन हो गया। सरल स्वभावी धर्मपरायणा ७० वर्षीया राजकुमारी जी काफी समय से गम्भीर रूप से रुग्ण थीं। वह अपने पीछे पति के अतिरिक्त ५ पुत्रियां-दामाद व उनकी सन्तान तथा एक बेटा-बहू छोड़ गईं हैं।

३० जनवरी को मुजफ्फरनगर में डॉ जयकुमार जैन, उपाध्यक्ष, अ.भा. दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद, के होनहार सुपुत्र **अभिषेक जैन** का आकस्मिक निधन हो गया।

३ फरवरी की प्रातः मुजफ्फरनगर में 'वर्णी प्रवचन' मासिक पत्रिका के ५७ वर्ष से सम्पादक रहे, सुलझे विचारों वाले, वर्णी द्वय के अनन्य भक्त, धर्मनिष्ठ सुश्रावक **श्री सुमेरचन्द जैन** का समाधिपूर्वक प्राणान्त हो गया।

१५ मार्च को दिल्ली में पूर्व महानगर पार्षद प्रबुद्ध चिन्तक एवं शोधादर्श के प्रशंसक-पाठक ८३ वर्षीय **श्री देवेन्द्र कुमार जैन** का निधन हो गया। वह अपना पार्थिव शरीर अ. भा. आयुर्विज्ञान संस्थान को दान कर गये।

३१ मार्च को लखनऊ में शोधादर्श की प्रशंसक-पाठक ८३ वर्षीया **श्रीमती मदालसा कंसल** (पत्नी पूर्व चीफ इंजीनियर श्री एस. के. कन्सल) नहीं रहीं।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति की कामना करता है तथा उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श ६६ प्राप्त हुआ। पं. मक्खन लाल शास्त्री जी के जीवन परिचय को पढ़कर हृदय गदगद हुआ। हमने दिल्ली में लालमन्दिर में शायद इन्हीं पंडित जी के भाषण सुने हैं। पत्रिका में अन्य लेख पढ़कर अति प्रसन्नता हुई।

- श्रीमती राजदुलारी जैन, कानपुर

शोधादर्श ६६ मिला। गत अंकों की भांति यह अंक भी शोधपूर्ण सामग्री से समन्वित है। गुरुगण-कीर्तन के अन्तर्गत पं. मक्खन लाल शास्त्री के जीवन पर सामग्री पढ़ने को मिली। डॉ. शशि कान्त जी ने अपने लेख 'महावीर -एक ऐतिहासिक व्यक्ति' में अपने चिन्तन से इतिहासपरक अनेक बातों पर अच्छा प्रकाश डाला है।

- ब्र. संदीप 'सरल', बीना

'शोधादर्श' मुझे नियमित रूप से मिल रहा है। पत्रिका में यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ विचारपूर्ण एवं शोधपरक लेख बहुत अच्छे होते हैं। आज इस तरह के लेखों और पत्रिका की बेहद आवश्यकता है। **'शोधादर्श'** के अंक ६६ में डॉ. शशि कान्त जी का लेख 'महावीर-एक ऐतिहासिक व्यक्ति' बहुत अच्छा विचारोत्तेजक लेख है।

- श्री तुलाराम जैन, अम्बाह, जिला-मुरैना

आपके द्वारा सम्पादित **शोधादश** के ६५ पृष्ठों में ही देश-विदेश की साहित्य-संस्कृति, कला, दर्शन, ज्ञान आदि विषयों पर जो सारगर्भित व्याख्या सुधी आलेख प्रदाताओं द्वारा ज्ञान के भण्डार को कम शब्दों में प्रस्तुत की गई है वह पत्रिका को समाजोपयोगी बनाकर निरन्तर एक आईना दिखाने वाली है। श्री रमा कान्त द्वारा गुरुगुण-कीर्तन की प्रवर्तित श्रृंखला बड़ी अच्छी रही है। **शोधादर्श** पत्रिका इसी प्रकार से बिना किसी भेदभाव के सभी लोगों का पथ प्रदर्शन करती रहे।

- डॉ. रजनीश शुक्ला, दिल्ली

शोधादर्श ६६ (नवम्बर, २००८) मेरे हाथ में है। 'कुछ रोचक प्रश्न एवं समाधान' के अन्तर्गत ३ प्रश्नों का समाधान टिप्पणियों के साथ दिया गया जो बहुत समयोचित है। ऐसे प्रश्नों का समाधान बहुत अपेक्षित है। 'महावीरः एक ऐतिहासिक व्यक्ति' यह लेख कई दृष्टियों से पठनीय और विचारणीय है। आपकी पत्रिका केवल शोधपरक न होकर 'बहुआयामी' है। पत्रिका के प्रायः सभी अंक संग्रहणीय तथा विचारोत्तेजक होते हैं।

- डॉ. सुदर्शन लाल जैन, वाराणसी

देवगढ़ के दिव्य शान्तिनाथ जिनालय से विलसित मुखपृष्ठ एवं वर्धमान स्वामी महावीर के चारु चित्र से अंकित अन्तः मुखपृष्ठमय **शोधादर्श**- ६६ का स्तरीय और अत्युपादेय अंक आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनंदानुभूति हुई। इस अभिराम अंक में गुरुगुण-कीर्तन : 'पं. मक्खन लाल शास्त्री', आपका सामयिक सुविचारित

सम्पादकीय- 'धार्मिक पर्वों पर पशुवधबन्दी', 'सामयिक परिदृश्यः क्षणिकाएँ', 'श्रीपाल चरित', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत की 'आध्यात्मिक कुण्डलियां' एवं पारदर्शी जी के 'पारदर्शी दोहे' पर्याप्त प्रभावपूर्ण एवं पठनीय लगे।

समासतः इस स्तरीय एवं संग्रहणीय अंक की श्रेष्ठ प्रस्तुति के लिए आपका सम्पादन कौशल और सारस्वत सत्प्रयास साधुवाद का सत्पात्र है।

- डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरया)

मैंने शोधादर्श -६४, ६५ और ६६ का अवलोकन किया। तीनों अंक अपनी शोध-परंपरा पर खरे उतरे हैं।

अंक ६४ में डॉ. शशि कान्त ने 'जैन सन्देश शोधांक - एक पर्यालोचन' में जो सामग्री संकलित की है वह शोधार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। साध्वी प्रवीण कुमारी 'प्रीति' ने अपरिग्रह का अनुत्तरौपपातिक सूत्र के सन्दर्भ में चिन्तन-मनन तथा साक्ष्याधारित महत्त्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है जो जीवन का सन्मार्ग आलोकित करता है अथवा करने में सक्षम है। 'अरिहन्त और अरहन्त : णमोकार मंत्र में सही कौन' यह विषय एक बार पुनः **शोधादश** में एक नए विचार के साथ प्रस्तुत हुआ है। श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' ने शास्त्रविहित साक्ष्य और तर्कपूर्ण विवेचन के द्वारा 'अरिहन्त' शब्द को ही सही ठहराया है। वर्तमान परंपरा में 'अरिहन्त' ही लोकप्रिय है।

अंक ६५ की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं- श्री रमा कान्त का सम्पादकीय-'अस्वीकार का अधिकार' जो सामाजिक उत्थान का एक उज्ज्वल पक्ष दर्शाता है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १९५८ ई. की रचना - 'समसगढ़- भोपाल का पुरातत्त्व' जिसके विषय में वर्तमान स्थिति को जानने की इच्छा पाठकों को है, श्री अजित जैन 'जलज' की शोधटीप - 'वनस्पति : धर्म एवं विज्ञान के भ्रम' जिसमें उठाए गए महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तरों की प्रतीक्षा रहेगी और डॉ. गणेशदत्त सारस्वत का गीत जिसमें जन्म से मरण पर्यन्त जीवन के बिम्ब प्रदर्शित हैं।

शोधादर्श-६६ अंक भी शोध का उच्च मानदण्ड स्थापित करने में पूर्णतः सक्षम है। गुरुगुण-कीर्तन जैन विद्या और वाङ्मय के शोधार्थियों के लिए संग्रहणीय महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराता है। इस बार इस अंक में 'जैन धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न है' तथा 'वेद पुराणों में जैन धर्म का अस्तित्व' जैसी कृतियों का उल्लेख उन्हें पढ़ने का प्रलोभन पैदा करता है। यों तो इस अंक के सभी आलेख ज्ञानवर्द्धक और रोचक हैं, किन्तु डॉ. शशि कान्त तथा प्रो. सागरमल जैन के लेखों ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। महावीर की ऐतिहासिकता का जो विवेचन डॉ. शशि कान्त ने प्रस्तुत किया है, वह तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों के आलोक में खरा उतरता है।

वस्तुतः उन्होंने एक इतिहास-अध्येता के रूप में महावीर का मूल्यांकन किया है, एक श्रद्धासिक्त भक्त के रूप में नहीं। आज महावीर का जो दैवी महनीय स्वरूप जैन धर्म के श्रद्धा-भक्तों ने उपस्थित कर रक्खा है वह नितांत भिन्न है और विचारणीय है। इस आलेख में अर्हन्त/अरिहन्त के विभेद का संकेत और 'निर्ग्रन्थ' तथा 'श्रमण' शब्दों का विवेचन सारगर्भित है।

प्रो. सागरमल जैन का आलेख पूर्णरूपेण तर्काधारित है। किन्तु क्या अब जैन शिक्षाओं के त्रिरत्न में सम्यक् चारित्र्य को प्रथम मान लेना चाहिए ? या 'जो जैसा माने' कहकर छोड़ देना चाहिए। कक्षा में जैन धर्म की शिक्षाओं को पढ़ाने वाले शिक्षक के समक्ष यह एक यक्ष-प्रश्न है।

'पाठकों के पत्र' स्तंभ के अंतर्गत डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल जी ने 'धनतेरस/ध्यानतेरस' को लेकर मेरी जिज्ञासा का जो उत्तर दिया है, उससे मेरी जिज्ञासा का समाधान नहीं हुआ है। मेरी जिज्ञासा ध्यानतेरस के ऐतिहासिक-साहित्यिक साक्ष्य से थी कि क्या किसी प्राचीन जैन ग्रंथ में ध्यानतेरस का उल्लेख मिला है ?

तीनों अंक की अन्य रचनाएँ-कविताएँ, गीत तथा अन्य सामग्री भी मनोरंजक/ज्ञानवर्द्धक तथा उपयोगी हैं। **- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ**

मुझे **शोधादर्श** नियमित प्राप्त होती है। मैं उसे मात्र पत्रिका न मानकर एक गवेषणात्मक दृष्टि प्रदात्री पत्रिका मानता हूँ। इसके माध्यम से हम अपने अतीत के गौरव एवं सिद्धांतों का निष्पक्ष आलेख व आलोड़न प्राप्त करते हैं। यों कहूँ कि यह एक आदर्श शोध पत्रिका है तो योग्य ही है। **-डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद**

आपके द्वारा संपादित **'शोधादर्श'** के प्रत्येक नवीन अंक में प्रकाशित प्रेरक आलेख और रचनाएं उसकी संरचनात्मक प्रगति को व्यक्त कर रही हैं। 'गुरुगुण-कीर्तन' द्वारा दिवंगत श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि अत्यंत ही ज्ञानवर्धक एवं प्रेरक है। **शोधादर्श** के ६६ वें अंक में विद्यावारिधि पं. मक्खनलाल शास्त्री के प्रति गुरुगुण कीर्तन अत्यंत खोजपूर्ण एवं प्रेरणात्मक है। इसी अंक में (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा लिखित 'सेठ खेमजी मूल जी भाई और संत गोविंददास' लेख हृदय को छू लेने वाला है। और डॉ. शशि कान्त जैन लिखित 'महावीर- एक ऐतिहासिक व्यक्ति' उनकी मौलिक ऐतिहासिक दृष्टि का परिचायक है। इसी प्रकार 'स्वतंत्र नारी संघ और सवारी करने का औचित्य क्या है', 'यज्ञोपवीत का औचित्य', 'पं. बेचरदास जीवराज दोशी' आदि सभी आलेख **शोधादर्श** की खोजपरक दृष्टि का आभास कराते हैं।

- श्री दर्शन लाड, मुंबई

स्वनाम धन्य पत्रिका **शोधादर्श** यथार्थ में एक सार्थक/संग्रहणीय पत्रिका है। पत्रिका की सम्पूर्ण सामग्री पूर्ण मनोयोग के द्वारा केवल पठनीय नहीं मनन-चिन्तन के योग्य उपयोगितापूर्ण होती है। प्रस्तुत ६६ वें अंक में अग्रलिखित सामग्री विशेष उपयोगी प्रतीत हुई यथा - श्री जिनवाणी स्तुति - पृष्ठ ७, आत्म सम्बोधन परक-आध्यात्मिक पद-पृष्ठ १२, महावीर-एक ऐतिहासिक व्यक्ति पृ. १३-१६, कुछ रोचक प्रश्न-समाधान-पृ. ११-१२, दक्षिण भारत की जैन जातियाँ एवं उनका विवरण-पृ. ४६-५२ एवं साहित्य-सत्कार स्तंभ से १८ नूतन प्रकाशनों की जानकारी से मन प्रमुदित हुआ। निःसन्देह ऐसी पत्रिका आदर्श पत्रिका है। सम्पादक का श्रम सार्थक-स्तुत्य है। मुख पृष्ठ पर उ. प्र. के ललितपुर जिलांतर्गत अतिशय श्रेत्र देवगढ़ के कलापूर्ण विशाल शिखर-जिनालय के चित्र ने क्षेत्र के प्रति एक-आकर्षण उत्पन्न किया है।

- पं. पवन कुमार शास्त्री 'दीवान', मोरेना

I express my deep gratitude to receive Shodha-Darsh very regularly and especially the 66th issue of the Year.

With reference to the article of Dr. Shashikantji Jain, "Mahavir, A Historical Person", I have gone through it very carefully.

—Dr. P. G. Mishrikotkar, Nagpur

शोधादर्श -६६ अंक पूर्ववत अपनी गरिमा, शोधात्मक एवं सुधारपरक भावना संजोये मिला। अज्ञात स्वतंत्रता सेनानी अन्वेषक श्री फूलचंद जैन की श्रमसाधना का पुण्यस्मरण करता हुआ आपको भी नमन करता हूँ जो क्रांतिकारियों के विस्मृत बिखरे इतिहास को कष्टदायी श्रमसाधना द्वारा प्रकाश में लाये। श्री फूलचन्द जैन जैसे अनेक नररत्नों ने जैन समाज को गौरवान्वित किया है किन्तु दुर्भाग्य कि धन एवं झूठी कीर्ति के चक्र में फैले नेतृत्व को ऐसे नररत्नों की स्मृति ही नहीं रहती है।

सम्पादकीय एवं गुरुगुण-कीर्तन-पं.मक्खनलाल शास्त्री दोनों ही प्रेरक, दिशाबोधक हैं। अब समय आ गया है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों अपने स्थूल मतभेदों को भुलाकर जैनत्व की भावना पूर्वक कुछ नया करें, अन्यथा सर्व संवैधानिक अधिकारों की विद्यमानता में हम सब कुछ लुटा देंगे। राजस्थान ने आदर्श स्थापित किया-बधाई।

श्री अजित प्रसाद जी जैन के 'कुछ रोचक प्रश्न और समाधान' तथा पृष्ठ २७ में प्रकाशित 'स्वतंत्र नारी संघ और सवारी करने का औचित्य क्या है' ये जैन संस्कृति की मर्यादा को झकझोरने वाले हैं। यदि समय रहते निरंकुश प्रवृति को नियंत्रित नहीं किया तो उसके आत्मघाती परिणाम होंगे। अब प्रजातंत्रीय व्यवस्था की आड़ में

राजनेताओं को सम्मानित कर आगम-विरोधी कृत्यों पर परदा डालने की परम्परा प्रारम्भ हो गयी है। जिन दीक्षा के आवरण में संसार सुख भोगो, धन एकत्रित करो, राजनेताओं की आड़ में अपनी कृत्रिम धाक बनाओ-एक यही सूत्र प्रभावशील हो गया है। ऐसी स्थिति में डॉ. शशि कांत जी द्वारा चित्रित 'महावीर - एक ऐतिहासिक व्यक्ति', एक ऐतिहासिक अवधारणा मात्र बन कर रह गया है। महावीर की त्याग प्रसूत साधना एवं आत्मचर्या लोकेष्णा-धनार्जन का साधन बन गयी ! कल्किराज घर में ही उत्पन्न हो गये !

प्रो. सागरमल जैन, श्री मूलचंद लुहाड़िया, श्रीमती इन्दुकान्त जैन के आलेख विचारोत्तेजक और मार्गदर्शक हैं, समीचीन निर्णय की अपेक्षा रखते हैं। अन्य आलेख, कविताएँ तथ्यात्मक एवं प्रेरक हैं। दिगम्बर जैन जातियों एवं दक्षिण भारत की जैन जातियों का विवरण जाति परम्परा एवं विकास की दिशा में शोध की प्रेरणा देता है। जातियों की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई। इस बिन्दु पर शोध करना अपेक्षित है। चौरासी जातियों में परवार पौरपट्ट का सम्मिलित न होना आश्चर्य का विषय है। बुंदेलखण्ड में इस जाति का बाहुल्य है। 'प' नाम के पोरवाड़ और परवडा क्रमांक १२ एवं ५३ में आये हैं। खोज अपेक्षित है।

साहित्य सत्कार में ११ रचनाओं की विषय-वस्तु एवं उनके रहस्य की संक्षेप में पाठकों के हितार्थ प्रस्तुति श्रम साध्य कार्य है। अन्य स्तम्भ भी शोधदर्शी भावना से ओतप्रोत हैं।

पाठकों के पत्रों का प्रकाशन प्रेरक होता है। कई बार ऐसा हुआ कि पाठकों के पत्र पढ़कर पुराने अंक पुनः पढ़ने पड़े और पाठक पत्र की भावनानुसार आलेख का मूल्यांकन को बाध्य होना पड़ा।

भाई श्री जमनालाल जी जैन सारनाथ नित नवीन चिंतन के पक्षधर हैं। उन्हें लेखक का अभिषेक विषयक आलेख शोधपरक लगा। मूर्ति, अभिषेक या जीवन शुद्धि- इन तीन में महत्वपूर्ण क्या है। इसका समाधान है जीवन शुद्धि। यदि मूर्ति पूजा, अभिषेक से जीवन शुद्धि नहीं हुई तो उसका उद्देश्य विफल हो जाता है।

भावपूर्वक पूजादिक कार्य करने से इष्ट की प्राप्ति होती है। उससे जीवन पावन होता है। हमने भाव छोड़ दिया, क्रिया मुख्य हो गयी। यही जीवन की विद्रूपता है।

-डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श ६६ मिला। **शोधादर्श** जन-जन के कल्याण के लिए, जीवन के विकास के लिए उपयोगी है, प्रेरक है, कल्याणकारी है।

- डॉ. रत्न लाल जैन, हांसी

शोधादर्श ६६ पूर्व अंकों के समान महत्त्वपूर्ण लेखों और सूचनाओं से परिपूर्ण है। गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया विद्वत् परिचय अपने आप में अद्वितीय है। **शोधादर्श** के माध्यम से आपने पुरानी पीढ़ी के विद्वानों को उनके गौरव के अनुसार महिमामंडित करने का जो उपक्रम किया है, वह स्तुत्य है। इस अंक में अज्ञात स्वतंत्रता सेनानियों के अन्वेषक फूलचन्द जैन और उनकी अमरकृति के बारे में जो तथ्य प्रकाशित किये हैं, वे अभी तक प्रायः अज्ञात ही रहे हैं।

- डॉ. शिवप्रसाद, वाराणसी

मास नवम्बर ०८ का **शोधादर्श** अंक ६६ प्राप्त हुआ। विद्यावारिधि पं. मक्खनलाल शास्त्री की वास्तविकता प्रथम बार सामने आई। उनकी साहित्यिक यात्रा आदि आकर्षक है। महापुरुष जो करके छोड़ जाते हैं वो जीवन पर्यन्त उनकी याद के लिए पर्याप्त होते हैं। अंक की संपादकीय पशु वध बन्दी संबंधी जो स्थिति बखान करती है, व शराब बन्दी की ओर ध्यान दिलाती है- सूझबूझ का सच्चा प्रमाण है। कुछ रोचक प्रश्न एवं समाधान, यज्ञोपवीत का औचित्य, तनाव या डिप्रेशन, कर्म सिद्धान्त का रहस्य संक्षिप्त होते हुए भी ज्ञानवर्धक हैं। पं. बेचरदास जीवराज दोशी तथा श्री फूलचन्द जी जैन संबंधी व्यक्तित्व आकर्षक होकर जीवन में परिश्रम तथा लगन से कार्य करने की सीख देते हैं। ध्यान जाना चाहिए। 'महावीर एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व' तथा कुन्दकुन्द जी के ग्रंथों में सम्यग्र्शन, ज्ञान और चारित्र का पूर्वापर क्रम, अच्छे शोधपूर्ण लेख हैं। ज्ञान प्रदान करते हैं। तवुज्जह की आवश्यकता है। दक्षिण भारत की जैन जातियों का ज्ञान भी जानकारी के लिए अच्छा है। पारदर्शी के दोहे तथा डॉ. सारस्वत की आध्यात्मिक कुण्डलियां आकर्षक हैं। पुस्तकों की संक्षिप्त समीक्षा भी उन्हें देखने की ललक जाग्रत करती है। समाचार विविधा अच्छी जानकारी सामने रखता है। अंक की अन्य सामग्री भी पठनीय है। अंक सदा की भांति अच्छा बन पड़ा है। विकास यात्रा में कदम पुख्तगी से बढ़ रहे हैं। इस हेतु सम्पादक मण्डल, सहयोगी भाई बधाई के पात्र हैं।

- श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

उत्तरोत्तर विकासोन्मुख **शोधादर्श** का ६६ वां अंक प्राप्त हुआ। एतदर्थ सम्पादक मण्डल को लख-लख बधाइयां। पत्रिका में सदा की भांति ज्ञानवर्धक सामग्री का प्राधान्य ही नहीं वरन् मनोरंजन की भी पर्याप्त व्यवस्था है। भाई रमाकान्त जैन का गुरुगुण-कीर्तन स्तम्भ अपनी रोचकता के कारण विशेष रूप से पठनीय है। विद्यावारिधि न्यायालंकार पं. मक्खनलाल शास्त्री की साहित्यिक और जैन धर्म संबंधी

उपलब्धियों का अति सुंदर एवं सरस विवेचन उनकी सम्पादकीयता में चार चाँद लगा देता है। उनकी 'क्षणिकायें' तो शोधादर्श की पहचान बन गई हैं। अपनी विशिष्ट व्यंग्यात्मक शैली के द्वारा वे पाठकों का मनोरंजन करने में किसी से पीछे नहीं हैं।

पुण्य स्मरण के अंतर्गत पं. बेचरदास जीवराज दोशी के राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा धार्मिक योगदान का तथ्यपूर्ण सरस विवेचन का श्रेय भाई रमाकान्त की विद्वत्ता एवं गूढ़ अध्ययन को जाता है।

इतिहास मनीषी डॉ. शशि कान्त जैन का गवेषणात्मक लेख 'महावीरः एक ऐतिहासिक व्यक्ति', न केवल विषय सामग्री वरन तथ्य निरूपण में बेजोड़ है। उनका प्रगाढ़ पांडित्य तीर्थंकर महावीर सम्बन्धी भ्रांतियों का निराकरण करने में पग-पग पर झलकता है। उनका गूढ़ अध्ययन, मनन, गंभीर चिन्तन और विषय प्रस्तुतीकरण ईर्ष्या का विषय है। अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से दीर्घकाल से प्रचलित अनेक विसंगतियों पर प्रहार करना उनकी पैतृक विशेषता है।

सूक्ष्म विषय 'तनाव' पर श्रीमती इन्दु जैन का लेख समय की मांग है। उन्होंने तार्किक, सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग कर विषय को स्पष्ट और सुग्राह्य बनाने का सफल प्रयास किया है। उनके सुझाव व्यावहारिक हैं।

श्री संदीप कान्त जैन ने अपने लेख में तमिलनाडु के विल्लूपुरम जिले की बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है कि यह स्थान किसी समय जैन धर्म का केन्द्र था।

- श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर

शोधादर्श की श्रेष्ठता और साहित्यिक स्तर के विषय में मै पहले कई बार लिख चुका हूँ। आदरणीय अजित प्रसाद जी के बाद तो जो भार आपने संभाला है वह स्तुत्य और सराहनीय है। आप प्रतिभाशाली तो हैं ही। आपकी क्षणिकाएं और कविताओं का चयन चुटीला और हृदयस्पर्शी होता है। कुछ अंक पूर्व पूना की विदुषी महिला का 'उञ्छ वृत्ति' पर लेख बड़ा ही शोधपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण था। उस पर विस्तृत टिप्पणी लिखना चाहता था पर अचानक बीमार हो गया और वह रह गया। 'उञ्छ वृत्ति' अपरिग्रह की चरम सीमा है जिसे कणाद आदि सभी सम्प्रदायों के ऋषियों ने अपनाया फलतः वे सभी सभी को मान्य रहे। उञ्छवृत्ति का उल्लेख बौद्ध, वैदिक, श्वेताम्बर आदि सभी साहित्यकारों ने किया है पर खेद है कि दिगम्बर आचार्य इससे विमुख रहे क्योंकि यहां प्रदर्शन और भोगवाद को क्रमशः प्रोत्साहन मिलता रहा।

"पंकज व्याकुल भया"----शीर्षक भजन की मूल प्रक्रिया को उजागर कर लोगों की भ्रान्ति दूर कर दी है जो श्रेयस्कर है।

-श्री कुन्दन लाल जैन, शहादरा, दिल्ली

आपके द्वारा प्रकाशित-जागृतिकारी-नव चेतनाकारी-आगोमक्त पत्र **शोधादर्श** प्राप्त हो रहा है। चिन्तन-मनन के बाद कुछ न कुछ आगम प्रमाण प्राप्त हो रहा है। आप व आपके पत्र के सभी लेखक बधाई के पात्र हैं।

शोधादर्श ६६ में प्रकाशित सामग्री समाज को आगम के आलोक में दिशा प्रदान करती है। 'कुछ रोचक प्रश्न एवं समाधान' द्वारा श्री अजित प्रसाद जी जैन ने श्रद्धालुओं को आगम प्रमाण का रास्ता दिखाया है।

'स्वतंत्र नारी संघ और सवारी करने का औचित्य क्या है,' में डॉ. राजेन्द्र कुमार जी जैन बंसल ने संघ परम्परा एवं श्रमण परम्परा के सम्बन्ध में प्रकाश डालकर समाज को राह दिखायी है। आगम के प्रमाण भी दिये हैं। 'यज्ञोपवीत का औचित्य' में श्री मूलचंद जी लुहाड़िया द्वारा जानकारी के साथ वह आवश्यक है या नहीं, पर प्रकाश डालकर मार्गदर्शन दिया है। अन्य सभी लेख समाज को राह दिखाने वाले हैं।

- पं. सरमनलाल जैन 'दिवाकर', सरधना

भगवान महावीर को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में दर्शाने वाला आपका **शोधादर्श** से साभार उदधृत लेख **वीर** के फरवरी अंक में पढ़ने को मिला है। आपने तत्कालीन इतिहास के आलोक में, तदुपरांत उनके मानने वालों की मनोदशा का गहन चिन्तन प्रस्तुत किया है। इतिहास के गहन अध्ययन पर आधारित यह लेख अवश्य ही महावीर के अनुयाईयों का मार्गदर्शन कर सकता है, लेकिन हमारा रूढ़िवादी समाज संभवतया इस पर ध्यान न देकर खोखली मान्यताओं को ही अपनाने या फिर यों कहें कि सुविधाजनक मानकर ही चलता रहेगा।

आपका यह लेख चिन्तनशील व्यक्तियों के लिए अच्छी खुराक है। इसमें कोई शंका नहीं है कि आप अपना काम जिस निष्ठा से कर रहे हैं उसका मूल्यांकन भावी पीढ़ियां अवश्य ही करेंगी, ऐसा मुझे विश्वास है। भगवान महावीर ने जिस सामाजिक क्रांति का उद्घोष किया था वह इस पौराणिक सोच के चलते विलुप्त हो गई है, उसे पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। **- श्री दीपचन्द जैन, दिल्ली**

'शोधादर्श' ६६ की प्रायः सभी रचनाएं प्रशंसनीय हैं। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को आत्मसात करने की प्रेरणा इन रचनाओं में अपने पूर्ण वैभव के साथ है। आज के इस घोर भौतिकवादी युग में जहाँ विकृत को ही प्रगति मान लिया गया है, ऐसी रचनाओं का महत्व द्विगुणित हो गया है। शोधादर्श के माध्यम से ऐसी रचनाएं सर्व जन सुलभ कर आप उदात्तता का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं वह सर्वथा स्वागत-योग्य है। आपके इस सारस्वत-अनुष्ठान को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर

भजन महावीर जयंती

(तर्ज-जब तुम्हीं चले परदेश.....)

ले जन्म यहाँ वर्धमान, किया कल्याण, जगत का प्यारा।
सिद्धारथ राज दुलारा।। ले जन्म।
चैत्र सुदि तेरस शुभ आई है, कुण्ड ग्राम में बंटी बधाई है।
माता त्रिशला ने, जनमा बालक प्यारा, सिद्धारथ राज दुलारा।। ले जन्म ..... ।।१।।
इन्द्रों ने महोत्सव मनाया है, देवियों ने मंगल गाया है।
तीनों लोकों के, नाथ ने लिया अवतारा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म ...।।२।।
भर यौवन वैभव छोड़ चला, बन सन्यासी वन को गमन किया।
फिर राग द्वेष को, जीत बना महावीरा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म ....।।३।।
पशुओं पर करुणा आयी थी, यज्ञों से बली मिटाई थी।
'जीओ जीने दो' का, तुमने दिया था नारा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म. ।।४।।
ऐवन्ता मुनि को प्यार दिया, हरिकेशी दलित को तार दिया।
अर्जुन पापी का, तुमने किया उद्धारा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म .....।।५।।
नारी जाति का मान किया, चन्दना को प्रमुख स्थान दिया।
जयन्ती श्राविका ने, पाया स्नेह तुम्हारा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म ....।।६।।
अहिंसा में धर्म बताया था, अनेकान्त का मार्ग दिखाया था।
युग-युग गूंजेगा, यह उपदेश तुम्हारा, सिद्धारथ राज दुलारा ।। ले जन्म ..... ।।७।।
जन्म कल्याणक प्रभु का आया है, घर-घर में आनन्द छाया है।
'लूण करण' चरणों में, करता नमन हजारा, सिद्धारथ राज दुलारा।। ले जन्म. ।।८।।

– **श्री लूण करण नाहर** (५१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ)

छपते-छपते : **एक बहुमुखी प्रतिभा का अवसान**

११ अप्रैल, २००६ ई. रात्रि ११-०० बजे लखनऊ में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की प्रबन्ध समिति के सम्माननीय सदस्य और **शोधादर्श** के सुधी प्रशंसक पाठक ८४ वर्षीय डॉ. पूर्ण चन्द्र जैन चिर निद्रा में लीन हो गये। डॉक्टर साहब का विस्तृत परिचय इसी अंक में पृष्ठ ५२-५३ पर प्रकाशित है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति और शोधादर्श परिवार दिवगंत को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, उनकी चिर शान्ति व सद्गति की कामना करते हैं तथा उनके स्वजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हैं।

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। मनीआर्डर भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्ट कार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों में पत्रिका का वार्षिक शुल्क २१ डालर है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिये। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक